आनंद से मनाते हैं—मोक्ष का अपूर्व महोत्सव

अहो, वीरनाथ परमदेव ! इष्ट ऐसा आपको परम सुंदर वीतरागमार्ग हमारे महा भाग्य से संतों की परंपरा में आज भी विद्यमान है। आपके मार्ग में झरते हुए वीतरागी आनंद से हम पावन हुए हैं। समंतभद्रस्वामी ने सत्य ही कहा है कि मिथ्यात्वी–चित्त आपकी उपासना नहीं कर सकता; सम्यक्त्वी ही आपकी उपासना करते हैं।

प्रभु, आपकी सर्वज्ञता, आपकी वीतरागता तथा शुद्धात्मा के आनंदरस से भरित आपका इष्ट–उपदेश—इनकी महानता को जो पहचानता है, वह तो आपके मार्ग में चलने लगता है, और उसके चित्त में आप विराजित हो, वही आपकी पूजा करता है। जो आपकी महानता को नहीं पहचानता, वह आपकी पूजा कैसे कर सकता है ? प्रभो ! हमने तो आपको पहचान लिया है, अतः हम आपके पुजारी हैं; और आपके निर्वाणमार्ग में रहकर, आपके निर्वाण का यह ढाई हजार वर्षीय महोत्सव अपूर्व आनंद से मना रहे हैं। — जय महावीर

तंत्री–**पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार** * संपादक : **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन**
वीर सं० 2501 कार्तिक (चन्दा : चार रुपये) वर्ष 30 : अंक 7

वीर सं. 2501
कार्तिक
दिसम्बर 1974

आत्मधर्म

वर्ष 30 वाँ
अंक 7
[355]

[सम्पादकीय]

अवसर आनंद का आया आंगन में

[अवसर मत चूकियो]

बंधुओ, अवसर आया है मोक्ष के साधने का!
अवसर आया है आनंदमय निर्वाण-महोत्सव का!
महावीरनाथ पधारे हैं मोक्ष का मार्ग दिखाने को!
मोक्ष के साधने का यह आनंद अवसर मत चूकना!

हे भगवान महावीर! आप ढाई हजार वर्षों से सिद्धपुरी में विराज रहे हो। ढाई हजार वर्ष पहले आप यहाँ भरतभूमि में विचरते थे और मोक्षमार्ग का उपदेश करते थे... भव्य जीव आपका इष्ट उपदेश झेलकर मोक्षमार्ग में चलते थे। उस प्रसंग को आज २५०० वर्ष बीत चुके—फिर भी हे भगवन्! हमको तो ऐसा ही दिखता है कि आज भी आप हमारे सन्मुख ही विराज रहे हैं और हमको मोक्षमार्ग का उपदेश दे रहे हैं; तथा हम उसे झेलकर आपके मार्ग में आ रहे हैं।—वाह! कैसा सुंदर है आपका मार्ग!—जो वीतरागता से आज भी सुशोभित हो रहा है। ढाई हजार वर्ष बीत जाने पर भी आपका मार्ग आज भी चल रहा है। अहा, ऐसा अद्भुत आनंदमार्ग आपने दिखलाया है—आपके इस उपकार को हम कभी नहीं भूलेंगे।

हे मोक्षमार्ग के नेता! परम भक्तिभावभीनी अंजलि के द्वारा हम आपको पूजते हैं—वंदन करते हैं।

— हरि

अभिवंदन

श्री पंचास्तिकाय में मोक्षमार्ग-प्रकरण के प्रारंभ में कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि अपुनर्भव के कारणरूप ऐसे महावीर को मैं शिरसा अभिवंदन करता हूँ।

अहो, कुन्दकुन्दाचार्य जैसे भी जिनको अभिवंदन करे, ऐसे महावीर भगवान के दिव्य महिमा का क्या कहना ? प्रभो ! आप तो अपुनर्भवरूप सिद्धपद को प्राप्त कर अभिवंदनीय हुए हो... और हमको भी अपुनर्भव होने का वह मार्ग दिखलाकर, हमारे लिये भी आप अपुनर्भव (मोक्ष) के कारण हुए हो। कारण के अनुसार कार्य—इस न्याय से आपका अनुसरण करनेवाले हम भी अपुनर्भव बन जायेंगे।

—जय महावीर

सोनगढ़ में मंगल दीपावली-पर्व

[श्री महावीरप्रभु के २५०० वर्षीय निर्वाण महोत्सव का उल्लासपूर्ण प्रवचन]

ज्यों-ज्यों कार्तिक वदी अमावस निकट आ रही थी, त्यों-त्यों निर्वाणप्रेमी मुमुक्षुओं के हृदय निर्वाण महोत्सव देखने को एवं मनाने को आतुर हो रहे थे। मुमुक्षु के मन एवं घर दोनों में परिवर्तन होने लगा था... मानों मोक्ष के मंगल प्रभात की उषा प्रगट हो रही थी। चतुर्दशी की रात चली गई... अमावस अभी आयी नहीं थी,—उसी समय मंगल शहनाईयाँ गूँज उठीं, हजारों दीपकों की जगमगाहट से मंदिर प्रकाशमान हो उठे, घर-घर वीरनाथ के मंगल गीत गूँज उठे। निर्वाण की अपूर्व घड़ी आ पहुँची। देव-गुरु के दर्शन करने को हजारों मुमुक्षु उमड़ पड़े। कानजीस्वामी को भी निर्वाणोत्सव के लिये बहुत उमंग था, अनेक दिन पहले से इस मंगल प्रसंग का स्मरण करते हुए आप कहते थे कि अहा, यह उत्सव सभी जैनों को मनाने योग्य है। हम लोगों का यह महान सौभाग्य है कि भगवान के मोक्ष का ढाई हजार वर्ष का ऐसा अवसर हमारे जीवन में आया है।

निर्वाण के मंगल प्रभात में ही आत्मशक्तियों को याद करके उनकी महिमा दिखाते हुए स्वामीजी ने कहा कि ऐसी शक्तिवाला आत्मा है, उस आत्मा में ही निर्वाण का उत्सव होता है। आज वही मंगल दिन है, जिस दिन भगवान मोक्ष पधारे; निर्वाण प्रेमी जीव भगवान का निर्वाणोत्सव मनाते हैं; यह महान उत्सव आज से प्रारंभ हो रहा है जो कि पूरे वर्ष तक चलता रहेगा।

इसप्रकार मंगलपूर्वक उत्सव शुरु हुआ। सबसे पहले श्री महावीर-कुन्दकुन्द-परमागममंदिर में विराजमान महावीर भगवान की पंचकल्याणक पूजा हुई... अहा, वीरनाथ की वीतरागमुद्रा देखते-देखते साधक जीव का आत्मवीर्य उल्लसित होता है। भावभीनी पूजा करते हुए भक्तों का अंतर आनंदित हो रहा था। हम श्री वीरनाथ भगवान से दूर नहीं किंतु उनके समीप में ही हैं—ऐसे आत्मीयभावों से महावीर-पूजन किया गया।

पूजन एवं मंगल गीत गान-भजन होने के उपरांत जिनवाणी का प्रवचन हुआ; प्रवचन में वीरमार्ग की अत्यंत महिमा दिखाते हुए श्री कानजीस्वामी ने कहा कि भगवान महावीर का निर्वाणमहोत्सव मनाने की सत्य रीत यह है कि भगवान ने इष्ट-उपदेश में जैसा आत्मस्वभाव दिखलाया है, वैसा अपने ज्ञान में-अनुभव में लेकर, मोक्ष के मार्ग में आत्मा को स्थित करना। भगवान जिस मार्ग से निर्वाण पधारे, उसी निर्वाणमार्ग में आत्मा का परिणमन करना, यही सच्चा निर्वाणोत्सव है।

वीरनाथ के निर्वाणोत्सव प्रसंग में, प्रवचन में वीरमार्ग का श्रवण करते हुए उल्लास होता था। चारों तरफ वीरवाणी रूप परमागमों के मध्य में, वीरनाथ के भव्य मंडप (परमागममंदिर) में बैठकर जिनवाणी का जब श्रवण करते थे, तब तो अहा! मानों वीरप्रभु के समवसरण में ही हम बैठे हैं—ऐसा भव्य दृश्य बन गया था।

प्रवचन के बाद तुरंत ही वीरप्रभु की भव्य रथयात्रा निकली; मानों वीरनाथप्रभु के साथ में विहार करते हों—ऐसे उमंग भाव से भक्तजन रथयात्रा में भाग ले रहे थे। उत्सव के दिन में सोनगढ़ की छटा कोई अनोखी थी, बाहर से अनेक मुमुक्षु यह निर्वाणमहोत्सव में आये थे और उत्सव देखकर आनंदित हुए थे।

दोपहर के प्रवचन बाद पूज्य बेनश्री-बेनजी (चंपाबेन एवं शांताबेन) ने वीरनाथ प्रभु की अद्भुत समूह-भक्ति करायी थी:—'अहो, वीरनाथ परमदेव! आपने हमको चैतन्यअनुभूति का मार्ग देकर हम पर महान उपकार किया है; आपकी जितनी भी भक्ति हम करें—वह अल्प ही है।'

आज के मंगल दिवस पर नवीन साहित्य प्रकाशन भी हुआ था। 'भगवान महावीर' की दीपावली-अभिनंदन-पुस्तिका (-जिसकी गुजराती-हिंदी में ४२,५०० प्रतियाँ छप चुकी हैं) पूज्य कानजीस्वामी के सुहस्त से मुमुक्षुओं को भेंट दी गई थी; स्वामीजी के हस्त से दीपावली की शुभ बोनी में महावीर भगवान की पुस्तिका भेंट लेते हुए सभी मुमुक्षु आनंदित होते थे। इसी प्रसंग पर जैन साहित्य के गौरवरूप जैनबालपोथी की 'रजतजयंति-आवृत्ति' (पच्चीसवीं आवृत्ति) का प्रकाशन हुआ था। (अब मिलकर पाँच भाषाओं में एक लाख तेतीस हजार प्रतियाँ हुई हैं।)

घर-घर में साज-बाज के साथ दिन भर वीरप्रभु के मंगल गीत गान गूँज रहे थे, जय-जयकार होते थे, नाटक होते थे, सक्कर या पुस्तकें बाँटी जाती थी; सभी का उल्लास ऐसा था कि हमारे वीरप्रभु के उत्सव में हम क्या-क्या करें ?

इसप्रकार वीरनाथ प्रभु के मोक्षगमन का २५०० वर्ष पूर्ण होकर २५०१ वाँ वर्ष बैठा; और दूसरे दिन (कार्तिक सुद १ के दिन) विक्रमसंवत २०३१ वाँ वर्ष प्रारंभ हुआ। (गुजरात प्रांत में विक्रमसंवत का प्रारंभ का-सु. प्रतिपदा से होता है।) वर्तमान में प्रचलित संवत्सरों में हमारा वीरनिर्वाण संवत सबसे प्राचीन है, तथा वीरनिर्वाण का उत्सव (दीपावली पर्व) भारत वर्ष में सबसे श्रेष्ठ तथा सर्वमान्य उत्सव है।

यह निर्वाण महोत्सव, मात्र सोनगढ़ में नहीं अपितु भारत भर में सर्वत्र बड़ी धूमधाम के साथ मनाया जा रहा है। देश के सभी रेडियो-ब्रॉडकास्ट भी महावीर की महिमा सुना रहे थे।—बाह्य में भी जिनके नाम का इतना भारी प्रभाव... तो फिर साधक के अंतर में प्रभु के मार्ग को साधते हुए कैसा उत्सव तथा कैसी अद्‌भुतता होती होगी!! उसका हे पाठक बंधुओं! आप ही अनुमान कर लेना... उसमें आपको कोई दूसरा ही परम अचिंत्य (महावीर का अंतरंग चेतनामय स्वरूप) दिखेगा... जिसको देखते ही तुम्हारे आत्मा में भी चैतन्य-दीपक जगमगाहट करता हुआ प्रकाशमान होगा।-यही है महावीर का सच्चा महोत्सव!

-जय महावीर।

* * * *

बंधुओं, आप सब लोगों ने भी उत्तम भावनापूर्वक यह आनंदमय उत्सव मनाया होगा। अनेक जगह से समाचार भी आ रहा हैं। अनेक जगह में सारे शहर के सभी जैनों ने मिलकर उत्सव मनाया और परस्पर प्रेम-वात्सल्यभाव प्रगट किया, यह भी जैनसमाज के लिये बहुत अच्छी बात है। हमें समस्त जैनसमाज में एक-दूसरे से मिलने-जुलने में संकोच नहीं रखना चाहिये।

अब मागशर वदी दसमी को (गुजराती में कार्तिकवदी १० को) महावीर भगवान के दीक्षाकल्याणक का मंगल दिन आ रहा है। जिन्होंने अपने अंतर में चैतन्य का अतीन्द्रियसुख

देख लिया था, ऐसे भगवान को, दैवी उपभोगों या राजवैभव आकर्षित न कर सकें। वीरकुमार को विवाह करने के लिये उनके माता-पिता ने बहुत अनुनय किया, परंतु संसार से विरक्त वे भगवान तो ३० वर्ष की आयु में संसार को छोड़कर साधु हो गये, साढ़े बारह वर्ष तक आत्म-साधना करके सर्वज्ञ परमात्मा बन गये और तीर्थंकर होकर परम मधुर इष्ट उपदेश के द्वारा भव्य जीवों को मोक्षमार्ग दिखलाया। ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा के स्वरूप को पहिचानकर, उनके गुणगान करनेवाला तथा उनका इष्ट-उपदेश क्या है, यह प्रसिद्ध करनेवाला, एक अभूतपूर्व सुंदर पुस्तक (सर्वज्ञ महावीर अने तेमनो इष्ट उपदेश) इस पत्र के संपादक के द्वारा लिखा जा रहा है।

अर्हंत भगवंतों का महान सुख... यही मुमुक्षु का परम इष्ट है।

महावीर के मार्ग को सेवो... और... महान सुख को पाओ।

अहा, आत्मा का अतीन्द्रियसुख किसको रुचिकर न होगा? राग से रहित उस महान आनंद की वार्ता सुनकर किस मुमुक्षु के हृदय में आनंद न होगा? किसी भी बाह्य पदार्थ की अपेक्षा से रहित आत्मा का सुख सुनते ही मुमुक्षु जीव उल्लास के साथ उसका स्वीकार करते हैं कि वाह! यह तो मेरा परम इष्ट! यह तो मेरे आत्मा का ही स्वभाव है।—इसप्रकार उल्लासपूर्वक स्वभावसुख का स्वीकार करते हुए मुमुक्षु सम्यग्दर्शन पाकर अतीन्द्रियसुख का स्वाद चख लेते हैं। अहा, कुन्दकुन्दस्वामी ने दिल खोलकर जिस सुख की प्रशंसा के गीत गाये—उस सुख के अनुभव की क्या बात? महावीरमार्ग के अतिरिक्त और कौन है—जो ऐसे सुख दिखा सके! हे भव्य जीवों! महावीर के मार्ग को सेवो और आत्मसुख को पावो।

[श्री प्रवचनसार, आनन्द-अधिकार, गाथा ५३ से ६८]

आत्मा का अतीन्द्रियज्ञान, वही एकांतसुख है। जहाँ ज्ञानस्वभाव है, सुखस्वभाव भी वहाँ है ही; अतः यदि गुणभेद न किया जाये तो जो ज्ञान है, वही सुख है। अतीन्द्रिय ज्ञानरूप

परिणत आत्मा ही अतीन्द्रिय सुखरूप है। आत्मा में ज्ञान परिणाम के साथ ही सुखपरिणमन भी है। सुख से रहित ज्ञान को सत्य ज्ञान नहीं कहा जाता। उसी प्रकार कोई कहे कि—हम सुखी है परंतु हमें आत्मा का ज्ञान नहीं है,—तो अतीन्द्रियज्ञान से रहित उसका सुख, वह सच्चा सुख नहीं है, मात्र इन्द्रिय-विषयों में उसने सुख की कल्पना कर ली है,—वह कल्पना मिथ्या है।

अरे प्रभु! तेरा ज्ञान और तेरा सुख दोनों अचिंत्य, इन्द्रियातीत, अद्भुत हैं; उनकी पहचान करने से तेरा ज्ञान इन्द्रियों से भिन्न हो जायेगा, तथा अतीन्द्रिय-महान ज्ञान-सामान्य में झुककर तन्मय हो जायेगा, तब तुझे तेरे ही अंदर महान सुख का अनुभव होगा। आत्मा का स्वभाव महान ज्ञान व सुखरूप स्वयं होनेवाला है, उसको अपने ज्ञान में या सुख में अन्य किसी की भी अपेक्षा नहीं है। जो सामान्य ज्ञान व सुखस्वभाव है, वही स्वयमेव विशेष ज्ञान तथा सुखरूप होता है; अतः आत्मा स्वभाव से ही ज्ञान व सुख है, उसमें अन्य कोई बाह्य विषय कुछ भी नहीं करते, वे तो अकिंचित्कर हैं।

जैसे गगन में सूर्य निरालंबी ज्योतिष-देव है, वह स्वयं उष्ण एवं प्रकाश है; प्रकाश के लिये या उष्णता के लिये उसे अन्य किसी की मदद नहीं लेनी पड़ती; वैसे दिव्य चेतना शक्तिवाला आत्मा स्वयं अपने स्वभाव में रहकर ही निरालंबीरूप से महान अतीन्द्रिय ज्ञान तथा सुखरूप होता है, वह स्वयं ही ज्ञान तथा सुख है; ऐसी दिव्य चेतनारूप परिणमन करनेवाला आत्मा स्वयं ही देव है।

जैसे सिद्धभगवान पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंदरूप स्वयं होनेवाले, दिव्य सामर्थ्यवाले हैं, वैसे सभी आत्मा का स्वभाव भी ऐसा ही है। 'अहो! ऐसा निरालंबी मेरा ज्ञान और सुखस्वभाव है'—ऐसा लक्ष करते ही जीव का उपयोग अतीन्द्रिय होकर उसकी पर्याय ज्ञान और सुखरूप प्रगट होती है... तब कोई अपूर्व, संसार में पूर्व कभी जिसका अनुभव नहीं हुआ, ऐसी चैतन्यशांति का संवेदन होता है। मेरे में से ही यह शांति आई, मेरा आत्मा ही ऐसी शांतिरूप है—इसप्रकार आनंद का गहरा समुद्र उसे प्रतीत में-अनुभूति में आ जाता है। अपना परम इष्ट ऐसा सुख उसे प्राप्त होता है और अनिष्ट ऐसा दुःख दूर होता है।

देखो, यह महावीर प्रभु का इष्ट-उपदेश है! महावीर भगवान का कहा हुआ वस्तुस्वरूप जो समझे, उसे ऐसे इष्ट की अवश्य प्राप्ति होती है।

जैसे सूर्य को आकाश में रहने के लिये किसी खंभे के आधार की जरूरत नहीं पड़ती, उसे उष्णता के लिये या प्रकाश के लिये कोई कोयले या तेल वगैरह ईंधन की जरूरत नहीं पड़ती; ज्योतिष नामकर्म के होने से वह स्वभाव से ही गगन में निरालंबी, उष्ण तथा प्रकाशमान देव है। वैसे ही सुख और ज्ञान जिसका स्वभाव है, ऐसी दिव्य शक्तिवाले आत्मा को, अपने अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंदरूप परिणमन में राग की-पुण्य की या इंद्रियविषयों की पराधीनता नहीं है, उन सबकी अपेक्षा के बिना स्वभाव से ही वह स्वयं ज्ञान-सुख तथा 'देव' है। सुख तथा ज्ञान आत्मा का स्वभाव ही है; उस स्वभाव की प्राप्ति होना ही इष्ट है। धर्मी को अपना ऐसा ज्ञान-आनंदमय सहज स्वभाव ही सबसे प्रिय है, वही उसका इष्ट है, अन्य कोई उसका इष्ट नहीं है।

* मेरा अतीन्द्रियस्वभाव ही मुझे अनुकूल एवं इष्ट है, उसके अवलंबन से ही मैं सुखी हूँ।
* मेरे ज्ञान या सुख के लिये मुझे इंद्रियों या किसी अन्य का आलंबन करना पड़े—तो उसमें पराधीनता होने से मेरे लिये प्रतिकूल है, वह मुझे इष्ट नहीं है, वह तो अनिष्ट है, दुःख है।

अहो वीरनाथ! वीतराग उपदेश के द्वारा हमारा ऐसा सुंदर इष्ट स्वभाव दिखलाकर आपने जो अचिंत्य उपकार किया है, उसका स्मरण होते ही हमारा हृदय आपके प्रति समर्पित हो जाता है।

अहो, सर्वज्ञ अरिहंत को रागरहित स्वाधीन अतीन्द्रिय महान आत्मसुख है—वह किसको रुचिकर न होगा? कौन मुमुक्षु ऐसे सुख को आनंद से सम्मत न करेगा? सर्वज्ञ का ऐसा इंद्रियातीत सुख, वह आत्मा का स्वभाव है—ऐसा जानते ही मुमुक्षु भव्य आत्मा प्रसन्नता से उसका स्वीकार करता है, और इंद्रियविषयों में (एवं उसके कारणरूप पुण्य में तथा शुभराग में) सुखबुद्धि-इष्टबुद्धि उसे नहीं रहती। ऐसे सुखस्वभावी आत्मा की श्रद्धा करने से स्वभाव के आनंद के वेदन सहित सम्यग्दर्शन होता है।

अहो वीरनाथ परम सर्वज्ञदेव! आप ऐसे अतीन्द्रियज्ञान या सुखरूप स्वयमेव परिणत हो रहे हो, और आपके जैसे परम-इष्ट आत्मा को पहचानकर उसका स्वीकार करने से, हमारा भी पूर्ण ज्ञानानंद से भरपूर आत्मस्वभाव हमारी प्रतीति में आ जाता है, मोक्षसुख के स्वाद का नमूना आ जाता है, जो हमें परम इष्ट है। इसप्रकार इष्ट प्राप्ति के महान आनंदपूर्वक हम आपको नमस्कार करके आपके ही मंगल मार्ग में आ रहे हैं। — जय महावीर

卐 जैन-श्रावक का धर्म 卐

सबसे प्रथम आत्मा का सम्यग्दर्शन, वह तो जैन-श्रावक का मूलभूत धर्म है; इसके उपरांत देव-पूजा, स्वाध्याय-मुनिसेवा-दान आदि व्यवहार आचार भी कितना सुंदर सुयोग्य होता है-उसका यह वर्णन है।

शुद्ध धर्म कहो या मोक्ष का मार्ग कहो, उसका मूल सम्यक्त्व है। सम्यग्दृष्टि जीव को आहारदानादि चार प्रकार का पात्रदान, रत्नत्रयवंत गुणीजनों की पूजा, रात्रिभोजन का त्याग आदि उत्तम आचरण होते हैं।

दानादि का केवल व्यवहार-आचार तो अज्ञानी भी करते हैं; परंतु यहाँ तो सम्यक्त्व सहित के व्यवहार-आचार की बात है। जिसे आत्मा के शुद्ध-धर्म की श्रद्धा है—ऐसे धर्मी श्रावक को आठ मूलगुण होते हैं। जिसमें माँस-मध-शराब आदि का सम्बन्ध हो, ऐसी वस्तु का, या ऐसी शंकावाली दवाई का भी नियमपूर्वक त्याग मूलगुण में आ जाता है; तथा जिसमें त्रस जीव हो, ऐसे खान-पान का त्याग होता है; शिकार, जुआ आदि तीव्र कषायवाले व्यसन नहीं होते; रात्रिभोजन नहीं होता, और पानी भी विधिपूर्वक छना हुआ प्रासुक उपयोग में लेता है। इसप्रकार व्यवहारधर्म का संपूर्ण विवेक श्रावक को बराबर होता है। अंतर में जहाँ वीतरागी चैतन्यतत्त्व वेदन में आया, वहाँ तीव्र हिंसा या तीव्र कषायवाली प्रवृत्ति नहीं रहती। अरे, नाम से भी जैन कहलानेवाले को मांसादि तीव्र अभक्ष का भोजन नहीं होता, तब फिर धर्मात्मा को तो उसका नाम भी कैसा ? ऐसे जीवों के साथ खान-पान का संबंध धर्मी को नहीं होता तथा जहाँ ऐसे अभक्ष का भोजन होता हो, ऐसे स्थल (हॉटेल आदि) में भी मुमुक्षु-सज्जन खान-पान नहीं करते। आजकल के छविगृह-सिनेमा आदि विषय-कषायपोषक कार्य भी मुमुक्षु जीव को शोभा नहीं देते; इसलिये धर्मात्मा तो ऐसी निरर्थक प्रवृत्ति को छोड़ ही देते हैं।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रधारक धर्मी जीवों के गुणों के प्रति श्रावक को बहुमान तथा पूज्यभाव आता है। स्वयं अपने को रत्नत्रयधर्म का प्रेम है, इसलिये दूसरे जीवों में वैसे धर्मी को देखकर प्रसन्नता और आदरभाव आता है; वह मुनि-श्रावक या साधर्मी आदि सुपात्र जीवों को आदर से आहारदान, शास्त्रदान आदि करता है। भरत चक्रवर्ती जैसे धर्मात्मा भी आहार के समय मार्ग में जाकर मुनिराज की प्रतीक्षा में खड़े रहते थे और भावना भाते थे कि कोई मुनि-धर्मात्मा पधार तो उन्हें भोजन कराकर बाद में मैं भोजन करूँ।—और जब कोई मुनिराज पधारते हैं, तब तो अत्यंत भक्ति से हृदय उल्लसित हो जाता है और भक्तिपूर्वक आहारदान देते है;—ऐसा भाव धर्मी को होता है। मुनि का सुयोग न मिले तो धर्म की रुचिवाले साधर्मीजनों के प्रति भी आदरभाव से दानादि करता है। अहा, ऐसा सर्वोत्कृष्ट जैनधर्म! और ऐसे सर्वोत्कृष्ट देव-गुरु-शास्त्र, उनके लिये मैं क्या करूँ! किसप्रकार उनकी महिमा करूँ! किसप्रकार जगत में उनका प्रभाव प्रसिद्ध करूँ ?—ऐसा धर्मी को उत्साह होता है। अंतर में तो सम्यक्त्वादि गुणों द्वारा अपने आत्मा को विभूषित किया है; और बाह्य में भी विवेकपूर्वक, जिनपूजा का उत्सव, गुरुसेवा-मुनिभक्ति, दान, स्वाध्याय, शास्त्रप्रचार आदि से जैनशासन की शोभा बढ़ाता है। मूल धर्म तो सम्यक्त्वादि वीतरागी शुद्धभाव है, और उसके साथ श्रावक को ऐसा शुभरागरूप व्यवहारधर्म होता है। धर्म-प्रवृत्ति में भी त्रसहिंसा न हो, उसका भी उसे विवेक होता है। और दान देने में भी पात्र-अपात्र का विवेक होता है। अन्य लौकिक कार्यों में तो लाखों रुपये का खर्च कर डाले और जैनधर्म के अति आवश्यक कार्य हो, उसमें पाँच-दस हजार खर्च करने में भी लोभ करे-तो उसे दान या धर्म का विवेक नहीं है। धर्मी को तो सभी प्रकार विवेक होता है। दान कार्य में भी जैनमार्ग की तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वृद्धि कैसे हो—उसका विचार करता है; धर्मात्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की विशेषता पहिचानकर उनके गुणों का बहुमान करता है।—इसमें गुण की पहिचान मुख्य है। धर्मात्मा के गुणों की पहिचान के बिना पात्रदान का सच्चा लाभ नहीं होता। मिथ्यादृष्टि को गुण को सच्ची पहिचान नहीं, अतः विवेक नहीं है, वह तो केवल राग को पहिचानता है, और राग में ही वर्तता है; राग से रहित धर्मी के रत्नत्रयगुणों को वह नहीं पहिचानता। यदि गुण की पहिचान करे तो उसको भी भेदज्ञान हो जाये। भेदज्ञान के बिना गुण-दोष की सच्ची पहिचान नहीं होती। जीव ने शुद्धात्मा की पहिचान के बिना केवल शुभराग से दान-पूजादि अनंत बार किया, उससे भवभ्रमण का अंत

नहीं हुआ। परंतु यदि एकबार भी राग से रहित चैतन्यगुणों की पहिचान करे तो भवभ्रमण का अंत आ जाये।

जिसने ज्ञान और कषाय का अत्यंत भिन्न अनुभव किया है, ऐसे धर्मी के अंतर में बहुत समताभाव होता है; वीतरागी समताभाव ही धर्मी जीव की एक क्रिया है; वह क्रिया राग से भिन्न है। इसप्रकार सम्यग्दर्शन के साथ श्रावक की वीतरागभावरूप क्रिया तथा दानादि शुभरागरूप क्रियाएँ भूमिका अनुसार होती हैं।

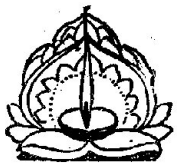

जम्बुकुमार का माता से संबोधन

धीर, वीर, दृढ़ ब्रह्मचारी श्री जम्बुकुमार जब वैराग्य से जिनदीक्षा लेने को तैयार हुए, उस समय उनकी माता शोकमग्न होकर विलाप करती हैं। तब जम्बुकुमार कहते हैं कि हे माता! तुम शोक को जल्दी छोड़ दो, कायरता को छोड़ दी। इस संसार की सभी अवस्थायें क्षणभंगुर हैं—ऐसा तुम विचार करो। हे माता! इस संसार में देवपद भी पाकर के इन्द्रियसुख कई बार मैंने भोगे परंतु उनसे तृप्ति न मिली, अब ऐसे अतृप्तिकारी विषयों से मुझे कोई प्रयोजन नहीं, अलम्.. अलम्। अब तो हम अपने अविनाशी चैतन्यपद को ही साधेंगे।—इसप्रकार अपनी माता से वैराग्यसंबोधन करके जम्बुकुमार ने जिनदीक्षा ले ली, और वे इस भरतक्षेत्र के अंतिम केवलज्ञानी हुए। आज वे भी महावीर भगवान के साथ सिद्धालय में विराजमान है; उन्हें हमारा नमस्कार!

वीरनाथ का मार्ग

वीरनाथ के मोक्षमार्ग में ज्ञान का लक्ष्य निज-आत्मा है।
भरतक्षेत्र के जीवों के ऊपर कुन्दकुन्दस्वामी का परम उपकार है।

भगवान महावीर प्रभु का २५०० वर्षीय निर्वाणोत्सव चल रहा है; उसमें हमें सबसे प्रथम यह जानना चाहिये कि भगवान ने कैसा मोक्षमार्ग दिखाया है ? वीरनाथ के मोक्षमार्ग में ज्ञान कैसा है ? ज्ञान का लक्ष्य क्या है ?—यह दिखाते हुए श्री कुन्दकुन्दस्वामी बोधप्राभृत में कहते हैं कि—

जो ज्ञान अतीन्द्रिय होकर आत्मा के सम्मुख हो गया, राग से पार होकर, इंद्रियों से पार होकर, अतीन्द्रिय आनंदमय आत्मा जिसने प्रत्यक्ष किया, ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान ही जिनमार्ग की सच्ची मुद्रा है। जहाँ ऐसा अतीन्द्रियज्ञान है, वहाँ पर जिनमार्ग है, जहाँ ऐसा ज्ञान नहीं है, वहाँ जिनमार्ग नहीं है। ऐसा ज्ञान किसप्रकार हो—यह बात समयसारादि में आचार्य ने अलौकिक ढंग से समझायी है। अहो, सीमंधर तीर्थंकर के पास जाकर, ऐसा अपूर्व श्रुतज्ञान लाकर कुन्दकुन्दस्वामी ने भरतक्षेत्र के जीवों को देकर अपार उपकार किया है।

मोक्षमार्ग में 'ज्ञान' किसको कहा ?

जिस ज्ञान का निशाना शुद्धात्मा हो, अर्थात् जो ज्ञान सीधा आत्मोन्मुख होकर उसको साधे, वही ज्ञान मोक्षमार्ग का ज्ञान है; इसके बिना अकेला बाह्य शास्त्रपठन या द्वीपसमुद्रादि का जानपना, उसे सच्चा ज्ञान नहीं कहा जाता, क्योंकि वह ज्ञान मोक्षमार्ग को नहीं साधता, आत्मा को लक्ष्य नहीं बनाता। महावीरादि तीर्थंकर भगवंतों की देशना तो ऐसी है कि ज्ञान को स्वसन्मुख करके आत्मा को निशान बनाकर उसको वेधो-जानो-अनुभवो।

ज्ञान का सच्चा स्वरूप जानने से साध्यरूप आत्मा का स्वरूप जानने में आता है; क्योंकि ज्ञान का लक्ष्य शुद्ध आत्मा है। जैसे बाण अपने लक्ष्य की ओर सम्मुख होकर उसको वेधता है, वैसे सम्यग्ज्ञानयपी तीक्ष्ण (अतीन्द्रिय) बाण, अपने लक्ष्यरूप शुद्धात्मा के प्रति सम्मुख होकर उसको वेधता है—अनुभव में लेता है—जानता है—ध्येय बनाता है। ऐसा लक्ष्यबेधी ज्ञान ही

मोक्ष का साधक है। वह ज्ञान, राग को अपना निशान नहीं बनाता, राग से पार होकर, शुद्धात्मा में पहुँच जाता है। अत: हे भव्य जीवो! ज्ञान का ऐसा स्वरूप जानकर भक्ति से उसका आराधना करो। ऐसे ज्ञान के बिना मोक्षमार्ग नहीं होता, ध्यान नहीं होता, संयम नहीं होता, व्रत नहीं होता। आत्मज्ञान के बिना पंच महाव्रत का पालन करनेवाला जीव भी असंयमी तथा संसारमार्गी है; और सम्यग्ज्ञान के द्वारा जिसने अपने शुद्धात्मा को ध्येय बनाया है, वह असंयमी हो तो भी मोक्षमार्गी है।

'णाणम् आदत्थम्' अर्थात् आत्मा में जो स्थित है, वही जिनमार्ग में सच्चा ज्ञान है; अथवा आत्मा जिसका अर्थ-प्रयोजन है, ऐसा स्वलक्षीज्ञान ही जिनमार्ग का ज्ञान है। जिससे आत्मा का प्रयोजन न सधे, निजस्वरूप न सधे, ऐसे शास्त्र-पठन को भी जिनमार्ग में 'ज्ञान' नहीं कहते। जिनमार्ग में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को मोक्षमार्ग कहा है, वे तीनों ही शुद्धात्मा के आश्रित हैं, आत्मारूप हैं; वे रागरूप नहीं हैं, पर के आश्रित नहीं हैं।

जो जाने सो ज्ञान;—किसको जाने? अपने लक्ष्यरूप शुद्धात्मा को जो जाने, वही ज्ञान है। जैसे बाण उसको कहते हैं कि जो अपने लक्ष्य को वेधे; वैसे अपने परमात्मस्वरूप को जो वेधे-जाने-अनुभवे, उसे ही जैनशासन में ज्ञान कहते हैं। साध्यरूप ऐसे निजस्वरूप को जो न साधे, उसे ज्ञान कैसे कहा जाये? अलक्ष्यवेधी निष्फल बाण की तरह वह ज्ञान मोक्ष को साधने के लिये निष्फल है; अत: वह ज्ञान नहीं, अपितु अज्ञान है।

जो राग है, वह कहीं ज्ञान का लक्ष्य नहीं है; ज्ञान से अभिन्न ऐसा आत्मस्वरूप ही ज्ञान का लक्ष्य है; स्वलक्ष्य को वेधना-एकाग्र होकर जानना, यह तो (अर्जुन की तरह) अत्यंत धीर पुरुष का कार्य है; चंचल मन से आत्मा नहीं साधा जाता। आत्मा को साधने के लिये जो ज्ञान अन्तर में उन्मुख हुआ, वह तो अत्यंत धीर है-शांत है-अनाकुल है, अनंतगुण के मधुर स्वाद को एकसाथ आत्मसात् करता हुआ वह प्रकाशमान होता है, चैतन्यरस अतीन्द्रिय स्वाद उसमें भरा है। ऐसे ज्ञान को पहचानकर आत्मा को साधना—यही भगवान वीरनाथ का मार्ग है।

❀ ❀ ❀ ❀

⁂ ज्ञान का निशाना शुद्धआत्मा; ज्ञानी के विनय से उसकी प्राप्ति ⁂

जो जीव पंचपरमेष्ठी भगवंतों के प्रति विनयवंत है, वह मोक्षमार्ग का ज्ञान प्राप्त करता

है। ऐसे ज्ञान को पाकर वह जीव मोक्षमार्ग के लक्ष्यरूप परम आत्मस्वरूप हो लखता है—जानता है-अनुभव करता है। ऐसा ज्ञान जैनमार्ग में ज्ञानियों की परंपरा से ही मिलता है; अत: जिसको ज्ञानी ने प्रति विनय-बहुमान न हो, वह जीव सच्चे ज्ञान को नहीं पा सकता। सर्वज्ञ परंपरा के कुन्दकुन्दाचार्य जैसे ज्ञानी-आचार्यों का विनय छोड़कर जो जैनमार्ग से अलग हुए, उन्हें मोक्षमार्ग का सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता।

ज्ञानी का सत्य विनय भी तभी हो सकता है, जबकि उसके ज्ञान का सत्य स्वरूप पहिचाना जाये। पहिचान के बिना बहुमान किसका? ज्ञान का धनुष व श्रद्धा के बाण से धर्मी-जीव परमात्मस्वरूप को लक्ष्यरूप करके मोक्षमार्ग को साधता है, वह अपने लक्ष्य को नहीं चूकता। भाई, तेरा लक्ष्य सत्य को बना। जिसका लक्ष्य ही असत् होगा, वह किसको साधेगा? लक्ष्य हो पूर्वदिशा की ओर, और निशान लगावे पश्चिम की ओर, तो वह लक्ष्य को साध नहीं सकता, उसका निशान निष्फल जायेगा। वैसे मोक्षमार्ग में लक्ष्यरूप जो रागरहित चैतन्यस्वरूप शुद्धात्मा है, उसकी ओर लक्ष न करके, उससे विरुद्ध ऐसे शुभराग को लक्ष बनावे तो उसके लक्ष से मोक्षमार्ग का निशान कभी नहीं सधता। अत: हे भव्य! प्रथम ही तू ज्ञानी के द्वारा लक्ष्यरूप शुद्धात्मस्वरूप का ज्ञान कर, और उसे ही ध्येयरूप बनाकर ध्या; उस ध्येय के ध्यान से तेरा मोक्षमार्ग सधेगा। ज्ञानी के सान्निध्य में सत्यमार्ग जानने से मार्ग के बारे में तेरी उलझन मिट जायेगी, और तेरा ज्ञान अपने सत्य लक्ष्योन्मुख (शुद्धात्म-सन्मुख) हो जायेगा; शुद्धात्मा के आश्रय से सुखपूर्वक तेरे को मोक्षमार्ग सिद्ध होगा।

संत-गुरुओं के द्वारा शुद्धात्मरूप अपने लक्ष्य को जो नहीं पहचानता, और राग के द्वारा मोक्षमार्ग प्राप्त करना चाहता है, उसको मोक्षमार्ग की प्राप्ति कभी नहीं होती; मोक्षमार्ग तो वीतराग सुखरूप है, और राग तो दु:खरूप है, राग कि जो स्वयं दुखरूप है, वह मोक्षसुख का कारण कैसे हो सकता है? बोधस्वरूप आत्मा को जो बुझे-जाने, वह सच्चा बोध है। बोधस्वरूप को जो न जाने, उसे बोध कौन कहे? राग में कहीं ऐसी ताकत नहीं कि बोधस्वरूप आत्मा को जान सके। जिससे ज्ञानस्वरूप आत्मा जाना जाये, ऐसे बोध का उपदेश महावीर भगवान ने मोक्षमार्ग में दिया है।

श्रीगुरु के पास में जाकर विनयवंत शिष्य ने पूछा—हे प्रभो! मुझे ज्ञान की प्राप्ति करा दो!

तब श्रीगुरु कृपा करके उसे कहते हैं कि हे भव्य! ज्ञान की प्राप्ति आत्मा में अंतर्मुखता से होती है, अत: तुम बाह्य का (हमारा भी) लक्ष छोड़कर तुम्हारे आत्मा की सन्मुख होवो। पर को लक्ष्य बनाने से ज्ञान प्राप्ति नहीं होगी; निजआत्मा को लक्ष्य बनाने से ही तेरे को ज्ञान प्राप्ति होगी।

अहो, जैनशासन का ऐसा अलौकिक ज्ञान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने प्रसिद्ध किया है। वाह, जैनगुरु कैसे परम निस्पृह हैं! वे स्वयं अपने को भी आश्रय छोड़ने का कहकर जीव को निज-स्वभाव का आश्रय कराते हैं। ऐसे वीतरागी निस्पृह गुरुओं के द्वारा दर्शाया हुआ जो सत्य मोक्षमार्ग है, उसका आश्रय छोड़कर जिन्होंने कुगुरु के कुमार्ग का आश्रय किया, वे अपने हित को भूलकर अपना अहित कर रहे हैं; ऐसे जीवों के ऊपर करुणा करके वीतरागी संतों ने सत्य मार्ग जगत में प्रसिद्ध किया है। हे भाई! इस मार्ग की आराधना से ही तुझे मोक्षमार्ग का सम्यग्ज्ञान होगा, और अल्पकाल में ही तेरे भवदु:ख का अंत होकर तेरे को मोक्ष की प्राप्ति होगी। अत: जिनमार्ग को जानकर भक्ति से आत्मा की आराधना करो।

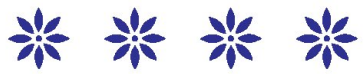

पूर्णता के लक्ष से सच्चा प्रारंभ

पूर्णता के लक्षपूर्वक जो प्रारंभ है, वही सच्चा प्रारंभ है। आत्मा की पूर्णता माने सर्वज्ञता; उस सर्वज्ञता के निर्णयपूर्वक ही मोक्ष के मार्ग का सच्चा प्रारंभ होता है। जो सर्वज्ञस्वभाव का स्वीकार करेगा, वह कभी राग को धर्म नहीं मानेगा, क्योंकि सर्वज्ञता के साथ राग की अव्याप्ति है और वीतरागता की व्याप्ति है, अर्थात् जहाँ सर्वज्ञता हो, वहाँ राग कभी नहीं होता, और जहाँ सर्वज्ञता हो, वहाँ वीतरागता अवश्य होती है। इसप्रकार सर्वज्ञता के लक्षपूर्वक (-ज्ञान और राग की भिन्नतापूर्वक) मोक्ष के साधने के लिये जो उत्सुक हुआ, वह साधकजीव समस्त रागभावों से भिन्न होकर ज्ञानरूप हुआ। जो सर्वज्ञस्वरूप का स्वीकार नहीं करता, वह अपने को रागरूप ही अनुभवता है, और राग के अनुभव द्वारा वीतरागमार्ग का प्रारंभ कभी नहीं हो सकता। राग से भिन्न ऐसी ज्ञान-अनुभूति के द्वारा ही मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है।—यही महावीर का मार्ग है।

पुण्य-पाप के सच्चे न्याय अनुसार
कर्ता-कर्म के स्वरूप की सच्ची समझ

जो सम्यग्ज्ञान के न्याय से सच्चे कारण-कार्य को नहीं जानता, और जैसे-तैसे इंद्रियज्ञान के द्वारा ही कर्ताकर्म की या कारण-कार्य की मिथ्या कल्पना करता है, वह जीव मिथ्याकल्पना से कैसी भयंकर भूल करता है ? तथा सच्चा ज्ञान उसकी मिथ्या कल्पना का कैसा निराकरण कर देता है ? यह आप इस लेख के दृष्टांत तथा सिद्धांत में देखेंगे।

एक बादशाह था; उसके गाँव में एक सेठ रहता था, वह नास्तिक जैसा था, परलोक को या पुण्य-पाप को नहीं मानता था।

उस सेठ के घर बालक का जन्म हुआ। बालक बहुत सुंदर, एवं अत्यंत कोमल शरीरवाला था।

एक बार सेठ अपने पुत्र को लेकर उत्साह से बादशाह के पास गया। बादशाह ने बालक को देखकर प्रसन्नता व्यक्त की; परंतु बालक का अत्यंत कोमल रूप देखकर यकायक बादशाह की बुद्धि में परिवर्तन हो गया; माँसभक्षी बादशाह को उस बालक का माँस खाने की अभिलाषा हुई। अत: सेठ से कहा—सेठजी ! अभी मेरे को क्षुधा लगी है और इस बालक को काटकर उसके माँस खाने की भावना हुई है। अत: तुम यह बालक दे दो !

बादशाह की बात सुनते ही सेठ तो कंपित हो उठे ! अरे, यह क्या ?—क्या मेरे इस इकलौते पुत्र को बादशाह खा जायेगा ?—नहीं, नहीं; यह तो बहुत बुरा होगा। तुरंत ही उसने बादशाह से कहा—नहीं, जहाँपनाह ! यह नहीं हो सकता; यह कार्य आपको शोभा नहीं देता।

तब बादशाह ने कहा—देखो सेठजी ! पुण्य-पाप को या पर भव को तो तुम मानते नहीं हो; और जब मैं इस बालक को खाऊँगा, तब मेरी क्षुधा मिटकर मुझे साता होगी; तब फिर इसमें बुरा क्या हुआ ? यदि बुरा हो तो उससे मुझे दु:ख होना चाहिये था; उसके विरुद्ध इसमें तो मेरी भूख का दु:ख मिटता है !

बादशाह का यह कुतर्क सुनते ही सेठ तो दंग रह गया। वह गहरे विचार में डूब गया...

उसकी आँखें खुल गईं; तत्क्षण वह नास्तिक में से आस्तिक बन गया। यदि पुत्र को बचाना हो तो, पूर्वजन्म का, तथा पूर्वजन्म के पुण्य-पाप के फल का स्वीकार किये बिना अन्य कोई मार्ग ही नहीं रहा। आखिर में, जैन सिद्धान्त अनुसार सुने हुए तत्त्व का उसे स्वीकार करना पड़ा। उसने बादशाह से कहा—सुनिए जहाँपनाह! मेरे पुत्र को खाने से आपको भूख का दुःख मिटेगा —यह बात आपकी सत्य नहीं है; जीव को सातारूप सुख अथवा असातारूप दुःख, अपने-अपने पूर्वजन्मकृत पुण्य-पाप के अनुसार होता है; आप जो साता होने का कह रहे हो, वह साता पुत्र के माँसभक्षण से नहीं होगी, परंतु पूर्व के साताकर्म के उदय से होगी। तथा वर्तमान में माँसभक्षण का जो तीव्र कषायभाव है, उसके फल में तो भयंकर आकुलता तथा भविष्य में नरकादि की अनंत असाता आयेगी।—अतः ऐसे तीव्र पाप परिणाम को आप छोड़ दीजिये।

हे बादशाह! आपकी क्षुधा मिटती है, वह कहीं माँस के खाने से नहीं मिटती परंतु उसप्रकार के साताकर्म के उदय से मिटती है; वर्तमान में माँस खाने का जो परिणाम है, वह तो महान पापरूप है, उसके फल में तो आयुकर्म बँधेगा तथा महान दुःख मिलेगा। पूर्व भव में जो पुण्य किया, उसका फल अभी दिखता है। कहीं वर्तमान पापका यह फल नहीं है। वर्तमान पाप के फल से तो भविष्य में महान दुःख का संयोग प्राप्त होगा।—इसप्रकार जीव भूत-भविष्य में नित्य रहनेवाला, और अपने शुभ-अशुभ के फल का भोगनेवाला है। अतः हे बादशाह! आप दुःखदायक ऐसे पापभाव को छोड़ दो। सातारूप सुख का कारण-कार्य संबंध माँसभक्षण के साथ नहीं है परंतु पूर्व के पुण्य के साथ है। पाप का फल तो दुःख ही है। पाप के फल में कभी सुख नहीं होता। अतः वस्तु के कारण-कार्य देखने में आपकी भूल है।

बुद्धिमान बादशाह सेठ की न्याययुक्त बात समझ गया, तथा पाप के फल से भयभीत होकर उसने माँसभक्षण का दुष्ट विचार छोड़ दिया।—देखो, यह जैनसिद्धांत का प्रताप।

यह बात अधिक स्पष्ट समझने के लिये कुछ और भी दृष्टांत लेकर विचार करें—

जैसे किसी चोर को चोरी करते हुए धन की प्राप्ति हो जाये, तो कहीं चोरी का तो वह फल नहीं है; तथा कसाई गायों को कत्ल करे और उसे धन मिले, वह कहीं गायों के वध का तो फल नहीं है; वर्तमान में चोरी-हिंसादि के पापभाव के फल से तो जीव को महान दुःख होगा। अभी जो धन मिलता है, वह तो पूर्व के पुण्य का बाह्य फल है।

चोरी करना, सो कारण और धन की प्राप्ति उसका कार्य,

हिंसा करना, सो कारण और धन की प्राप्ति उसका कार्य,

— यदि ऐसा कोई माने तो वह कारण-कार्य की भयंकर भूल करता है। सच्चे कारण-कार्य को वह नहीं जानता।

— उसीप्रकार —

भाषा को बोलना, हाथ-पैर का चलना, पुस्तक का खुलना-बंद होना, अक्षरों का लिखा जाना, रोटी का बनना-इत्यादि जो-जो क्रियाएँ आँख से देखने में आती हैं, वे सब जड़ के कार्य हैं, अचेतन हैं। अचेतन पदार्थ के वे कार्य, और जीव उनका कर्ता—ऐसा यदि कोई माने तो वे भी उपरोक्त दृष्टांतों की तरह जीव-अजीव के कारण-कार्य संबंध में भयंकर भूल करते हैं।

हे भाई! किसी भी अचेतन कार्य में, कारणरूप से जीव हो—ऐसा हमको या तुमको किसी को दिखता तो नहीं है। क्या जीव को तूने उस अचेतन कार्य को करता हुआ कभी देखा है? जीव को तूने देखा तो नहीं; उसका अस्तित्व कैसा है—वह भी तू नहीं जानता, तब फिर जीव कर्ता हुआ—यह बात तू कहाँ से उठा लाया?

अरे, जिस वस्तु को तूने देखी ही नहीं उसके ऊपर व्यर्थ झूठा आरोप क्यों देता है? यदि तूने जीव को देखा होता तो वह तेरे को चेतनस्वरूप ही दिखता, और तब यह जीव जड़ की क्रिया का कर्ता हो-ऐसा तू कभी नहीं मानता। अतः, बिना देखे तू जीव के ऊपर अजीव के कर्तृत्व का मिथ्या आरोप मत लगा; यदि किसी के ऊपर मिथ्या आरोप लगायेगा तो तेरे को बड़ा पाप लगेगा (जैसे राजा ने माँसभक्षण से सुख होने का मानकर गलती की थी, वैसे तेरी भी गलती होगी।)

किसी राजमहल में चोरी हुई... एक सज्जन जो कि राजमहल से बहुत दूर रहता है, राजमहल में जो कभी आया भी नहीं,—फिर भी दूसरा कोई मनुष्य उसके ऊपर कलंक लगाता है कि चोरी का कर्ता यह सज्जन है!

— तो कलंक लगानेवाले से हम पूछते हैं कि—हे भाई!

❀ क्या उस सज्जन को राजमहल में चोरी करता हुआ तूने देखा है ?.....ना।

❀ क्या उस सज्जन की सज्जनता को तू पहचानता है ?.....ना।

❀ क्या उस सज्जन के पास से चोरी का माल तूने देखा है ?.....ना।

अरे दुष्ट ! जिस सज्जन को तूने चोरी करता हुआ देखा नहीं, जो सज्जन राजमहल में कभी आया नहीं, जिस सज्जन को तू पहचानता भी नहीं, और जिस सज्जन के पास में चोरी का कोई माल होने का सबूत नहीं है—ऐसे सज्जन के ऊपर चोरी का मिथ्याकलंक तू लगा रहा है–तो इससे तेरे को महान पाप होगा।

उसीप्रकार—(यहाँ सज्जन अर्थात् चेतनरूप जीव।) अचेतन–जड़–पुद्गल के महलरूप यह शरीर, उसमें कोई कार्य हुआ—चलना–बोलना–खाना आदि क्रिया हुई; अन्य चेतनतत्त्व उससे अत्यंत दूर अर्थात् सर्वथा जुदा रहता है, वह कभी पुद्गल में जाता ही नहीं–पुद्गलरूप होता नहीं, तो भी अज्ञानी उसके ऊपर कलंक–आरोप लगाता है कि जड़ की क्रिया का कर्ता जीव है !

— उस कलंक लगानेवाले से ज्ञानी पूछते हैं कि—हे भाई !

❀ क्या तूने जीव को जड़ की क्रिया करता हुआ कभी देखा है ?.....ना।

❀ क्या तूने अतीन्द्रिय–अरूपी–चेतनमय जीवतत्त्व को पहचाना है ?.....ना।

❀ क्या जीव के अंदर कभी पुद्गल की कोई क्रिया तूने देखी है ?.....ना।

तब फिर, अरे अज्ञानी ! जिस जीवतत्त्व को जड़ का काम करते तूने कभी देखा नहीं, जिस जीवतत्त्व ने शरीर के पुद्गल के अंदर प्रवेश भी नहीं किया, जिस जीवतत्त्व को तू पहचानता भी नहीं, और जिस जीवतत्त्व में अजीव का कोई निशान भी नहीं है—ऐसे निर्दोष सत् चैतन्यतत्त्व के ऊपर तू जड़–पुद्गल के साथ संबंध का मिथ्या आरोप लगाता है, तो इससे तेरे को मिथ्यात्व का पाप लगेगा। चैतन्यतत्त्व को पर का कर्ता कहकर तू उसका अवर्णवाद कर रहा है, यह बहुत भारी अपराध है। अत: यह बात समझ ले कि—

— जैसे माँस खाना और साता होना—ये दोनों एक ही काल में होते हुए भी दोनों के कारण–कार्य भिन्न–भिन्न हैं;

— जैसे गायों को काटना और पैसा मिलना, ये दोनों के कार्य-कारण भिन्न-भिन्न हैं।

— वैसे जड़ की क्रिया और ज्ञान की क्रिया—ये दोनों एक साथ होते हुए भी दोनों के कारण-कार्य सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं।

प्रत्येक वस्तु के सच्चे कारण-कार्य को जानो; जीव के कारण-कार्य को जीव में ही जानो तथा अजीव के कारण-कार्य को अजीव के जानो—ऐसा भेदज्ञान, वह जैनधर्म की उत्तम नीति है; उस जैननीति का पालन करनेवाला जीव मोक्ष को साधता है; और जैननीति का उल्लंघन करनेवाला (अर्थात् जड़-चेतन के कारण-कार्य को भिन्न न मानकर एक-दूसरे में मिला देनेवाला) जीव संसार की जेल में फँसकर दु:खी होता है। वीरमार्ग को पाकर जड़ चेतन का सर्वथा भेदज्ञान करो... और भवदु:ख से छूटकर मोक्षसुख को पाओ।

मार्ग का प्रारंभ

[ज्ञानस्वभाव का निर्णय करनेवाला जीव आनंदपूर्वक सर्वज्ञ के पथ पर चला जाता है।]

[मुमुक्षु के लिये महत्व की मूल बात]

आत्मकल्याण के मार्ग का, मोक्ष के मार्ग का या जैनधर्म का प्रारंभ कब होता है ?

इसके संबंध में श्री कानजीस्वामी अत्यंत महत्त्व देकर बारबार कहते हैं कि—जिन्हें आत्मा की सर्वज्ञदशा प्रगट हुई है, ऐसे सर्वज्ञ भगवान इस जगत में विद्यमान हैं, और आत्मा में ऐसा सर्वज्ञस्वभाव है, इसप्रकार सर्वज्ञस्वभाव की पहचान एवं प्रतीत करे, तभी जीव को मोक्ष के मार्ग का या धर्म का प्रारंभ होता है। अत: 'धर्म का मूल सर्वज्ञ' कहा है।

अब यह प्रश्न होता है कि ऐसे सर्वज्ञस्वभाव का निर्णय किसप्रकार हो ?

इसके उत्तर में श्री कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि राग से भिन्न ऐसे अतीन्द्रियज्ञान के द्वारा ही सर्वज्ञस्वभाव का निर्णय होता है, राग से उसका सच्चा निर्णय नहीं हो सकता। 'सर्वज्ञता' का स्वीकार करनेवाला ज्ञान तो राग से जुदा होकर निर्विकल्प हो जाता है। (समयसार गाथा ३१; प्रवचनसार गाथा ८०)

सर्वज्ञ की श्रद्धा कहो, आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा कहो, या मोक्षतत्त्व की श्रद्धा कहो, उसकी श्रद्धा के बिना अन्य किसी प्रकार से धर्म का प्रारंभ कभी नहीं हो सकता।

जो सर्वज्ञ होता है, वह वीतराग ही होता है; और जो वीतराग हो, उसी का उपदेश प्रमाणभूत (इष्ट) होता है; अतः सर्वज्ञ की वाणी में जो जीवादि पदार्थ कहे हैं, वे ही सत्य हैं। (दूसरे जैन संत-गुरु भी सर्वज्ञ की परंपरा के अनुसार ही उपदेश देते हैं, अतः वह सत्य है।) जब तक जीव सर्वज्ञ का निर्णय न करे, तब तक उसे जिनवाणीरूप आगम की श्रद्धा में भी निःशंकता नहीं आ सकती; 'इस शास्त्र में जो कहा है, वह परम सत्य है' ऐसी दृढ़ता सर्वज्ञ की पहचान के बिना नहीं आ सकती; और ऐसी दृढ़ प्रतीत के बिना ज्ञान उस मार्ग पर चल नहीं सकता। जो सर्वज्ञ का निर्णय नहीं करता, वह उसकी वाणीरूप शास्त्र का भी निर्णय नहीं कर सकता।

जिसे सर्वज्ञ की पहचान नहीं है, उसे देव-गुरु-शास्त्र की, या नवतत्त्व की भी श्रद्धा नहीं होती; तत्त्वश्रद्धा के बिना वह आत्मा को नहीं साध सकता, उसे सच्चा ध्यान नहीं होता, उसे धर्म का प्रारंभ भी नहीं होता।

सर्वज्ञ का सच्चा स्वरूप जिसके मत में नहीं है, उसको धर्म जरा भी नहीं होता। इसलिये ज्ञानीजन अत्यंत जोशपूर्वक बारबार कहते हैं कि हे भव्य जीवो! सर्वज्ञस्वभावी आत्मा को पहचानो। उसकी पहचान से अपूर्व आनंदसहित मोक्षमार्ग का प्रारंभ होगा।

यही बात प्रवचनसार में श्री कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि भगवान अरिहंतदेव के शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा को जो पहचानता है, वह अपने आत्मा को भी वैसा ही पहचानता है, और उसका मोह नष्ट होकर उसे सम्यग्दर्शन होता है। अहो! सर्वज्ञ की पहचान में तो बड़ी गंभीरता है, मोक्ष का मार्ग है; मोह का नाश है।

समयसार की ३१वीं गाथा में भी कहा है कि जो जीव अपने अतीन्द्रिय ज्ञानानंदस्वरूप विज्ञानघन भगवान आत्मा को अतीन्द्रियज्ञान से अनुभव में लेता है, वह जीव इंद्रिय को जीतनेवाला है, अर्थात् इंद्रियों से भिन्न अतीन्द्रियज्ञानरूप अपने आत्मा को अनुभव में लेनेवाला है; और वही सर्वज्ञ-केवलीभगवान को पहचानकर उनकी परमार्थस्तुति(आराधना) करनेवाला है।

श्री कार्तिकस्वामी भी धर्म अनुप्रेक्षा के प्रारंभ में कहते हैं कि धर्म का मूल सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ का निर्णय करने से उनके कहे हुए जीवादि तत्त्वों का सच्चा निर्णय होता है और वहीं से मार्ग का प्रारंभ होता है। सर्वज्ञ के स्वरूप का सच्चा निर्णय करे और मोक्षमार्ग का प्रारंभ न हो—ऐसा नहीं बन सकता। साधक के ज्ञान में सर्वज्ञदेव सदा बिराज रहे हैं; उसके ज्ञान में सर्वज्ञ का कभी भी अभाव नहीं है, अतः उसे सर्वज्ञ का कभी विरह नहीं है। सम्यक् श्रुतज्ञान के बल से वह केवलज्ञान को बुलाता है; अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव को सदा अपने अंतर में (श्रद्धा-ज्ञान में) रखकर वह आनंद से सर्वज्ञ के पथ पर चला जाता है।

—००—

हे वीरनाथ! दुःखमय ऐसा पंचम काल भी, आपके वीतरागी उपदेश द्वारा हमारे लिये तो आत्म-आराधना का आनंदमय उत्तमकाल बन गया है। आपके आत्मा का यह एक आश्चर्यकारी चमत्कार है।

ज्ञानी आनंद से नचाते हैं—अपनी ज्ञानचेतना को

ज्ञानचेतना आनंदरूप है..... वह मोक्ष का मार्ग है।
अज्ञानचेतना आनंदरूप है..... वह संसार का मार्ग है।

शुद्ध चैतन्यस्वरूप जीव मैं हूँ, सर्व राग-द्वेष या हर्ष-खेद से रहित मेरा आनंदमय स्वरूप स्वानुभव में मुझे प्रत्यक्ष आस्वाद में आता है—ज्ञानी की ऐसी अनुभूति का नाम ज्ञानचेतना है। आचार्यदेव मंगलरूप आशीर्वचन कहते हैं कि अहो ज्ञानीजनो! ऐसी आनंदमय ज्ञानचेतना को नचाते हुए (परिणमाते हुए) अभी से लेकर अनंत काल तक निरंतर आत्मा के प्रशमरस को पिओ।

ज्ञानी की ज्ञानचेतना राग-द्वेष को नहीं करती, तथा हर्ष-शोक को नहीं भोगती; इसप्रकार उसकी ज्ञानचेतना में परभावों का प्रतिक्रमण तथा प्रत्याख्यान है। आत्मा में ऐसी ज्ञानचेतना को आनंद से नचाकर अर्थात् स्वयं ऐसी आनंदमय ज्ञानचेतनारूप परिणत होकर ज्ञानी मोक्ष को साधता है, और सदाकाल चैतन्य के प्रशांत—प्रशमरस को पीता है। अहा, यह प्रशमरस के स्वाद की कल्पना भी राग में या हर्ष में नहीं हो सकती। हर्ष-खेद या राग-द्वेष के भावों में ज्ञान का संचेतन नहीं है; ज्ञान का स्वाद उनसे सर्वथा भिन्न जाति का है; अतः उस हर्ष-खेद या राग-द्वेष के अनुभव को 'अज्ञानचेतना' कहा है, वह अशुद्ध है, उसमें दुःख का वेदन है और वह संसार का कारण है।

इस तरफ अमृत का वृक्ष है; उस तरफ विष का वृक्ष है; भाई! विषवृक्ष के कटू फल तो तूने अनादि से चखा, और उससे तू संसार में दुःखी ही हुआ। अरे, अब तो तेरी चेतना को ज्ञानरूप करके अमृत के वृक्ष का मधुर फल एकबार चख ले। वह महान अतीन्द्रिय आनंदरूप है और मोक्ष का कारण है। अरे, शांति का अभिलाषी मुमुक्षु तो ऐसा उपदेश सुनते ही तत्क्षण राग से भिन्न होकर अंतर की चेतना का अनुभव कर लेता है। अरे, शुभराग में भी जिसे अशांति का अनुभव हो, वह मुमुक्षु अशुभराग की भट्ठी में तो कैसे सुख मानेगा? कभी नहीं मानेगा। वह

तो शुभराग की अशांति से भी हटकर चैतन्य की वीतरागी शांति का अनुभव करेगा। और इसप्रकार ऊँची-ऊँची भूमिका की प्राप्ति के लिये ही महावीर भगवान का उपदेश है।

हे भाई! तेरे को आनंद कैसे हो और तेरा आत्मा दु:ख से केसे छूटे? इसका मार्ग संत तुझे दिखाते हैं। तू वह है कि जिसके वेदन में शांति व आनंद का स्वाद आता है; यही तेरा सच्चा रूप कहो या शुद्धस्वरूप कहो। जिसके वेदन में शांति का स्वाद न आवे और आकुलता तथा अशांति हो, वह तेरा सच्चा स्वरूप नहीं है, उसको तू अपनी ज्ञानचेतना से भिन्न जान। मैं राजा, मैं देव—ऐसे वेदन में कोई सुख नहीं है; परंतु चेतनभावरूप आत्मा का जो वेदन है, वह शांतरस के अमृत से भरपूर है। ज्ञानीजन ऐसे स्वरूप की अनुभूतिरूप ज्ञानचेतना को आनंद से नचाते हैं। अरे, मेरी आनंदमय ज्ञानचेतना में राग के भी किसी भाव का कर्तृत्व-भोक्तृत्व या स्वामीत्व नहीं है, तब फिर जड़-अचेतन भिन्न वस्तु का स्वामीत्व या कर्तृ-भोक्तृत्व मेरे में कैसा? अत: ज्ञानचेतनामय स्वद्रव्य को छोड़कर अन्य कोई परद्रव्य में मेरी प्रवृत्ति नहीं है। इसप्रकार ज्ञानचेतनावंत धर्मात्मा स्वद्रव्य को ही आत्मरूप संचेतन करता हुआ, अन्य समस्त भावों से जुदा ही रहता है। वह चैतन्य के प्रशांतरस को पीता हुआ, अपने शुद्धात्मतत्त्व का जतन करता है; अरे! आनंद में बसनेवाला मेरा आत्मा, उसे मैं परभाव में क्यों जाने दूँ? अहो जीवो! ज्ञानचेतना का कलश भरभर के चैतन्य के शांत-प्रशमरस को सदैव पीते रहो—यही भगवान का सच्चा भजन है। बाह्य में भगवान के प्रति जितना रागभाव है, इतनी तो कर्मचेतना है, उस कर्मचेतना में शांति नहीं होती; उसी समय ज्ञानी तो भेदज्ञान के बल से अपनी ज्ञानचेतना को राग से जुदी ही चेतते हैं, वह ज्ञानचेतना शांतरस से भरपूर है।

चैतन्यतत्त्व अमृत का कलश है; अमृतचंद्रदेव ने समयसार के कलशों के द्वारा अमृत रेलाया है। अरे जीव! तू अपने भीतर देख तो सही—कि आत्मा कैसा सुंदर शांतरस से भरा हुआ है! ऐसे अद्‌भुत आत्मा को समझने के लिये अन्य भावों से निवृत्त होना चाहिये। जो बाह्य के अन्य परभावों से अवकाश ही नहीं लेता, वह आत्मा को कब समझेगा? आत्मा की समझ तथा अनुभूति के लिये अन्य सबका रस छूटकर आत्मा का परम प्रेम होना चाहिये, बहुत पात्रता होनी चाहिये। अहा, आत्मा की अनुभूति करनेवाला जीव तो जगत से जुदा होकर अपने स्वद्रव्य में आ गया। वह समस्त कर्म तथा कर्मफल से रहित ऐसी कोई आनंदमय

अद्भुतदशा को प्राप्त कर, आप अपने में शांति के आस्वाद से परम तृप्त रहता है। आत्मा के स्वरूप को चेतनेवाली चेतना का परिणमन महान आनंदरूप है। ऐसे आनंदसहित धर्मात्मा अपनी ज्ञानचेतना को अपने में ही परिणमाता हुआ प्रशमरस को पीता है; स्वयं अपने आनंदरूप परिणमन करनेवाले धर्मात्मा को, दुनिया में कोई माने या न माने—उसके साथ क्या संबंध है ? बहुत लोग पहचाने या बहुमान करे, इससे जीव को शांति मिल जाये—ऐसा नहीं है; तथा दुनिया के लोग न पहिचाने या आदर-सत्कार न करे, इससे कहीं अपनी शांति चली नहीं जाती। चेतना को अंतर्मुख करके आत्मा में से आनंद का निधान निकाला—तब जीव स्वयं आनंदरूप-शांतरसरूप हुआ, इसमें अन्य किसी की अपेक्षा नहीं है। अरे, जिस चेतना को राग के साथ भी संबंध नहीं है, उसका पर के साथ संबंध कैसा ? अतः ज्ञानचेतना से भिन्न ऐसी अज्ञान-चेतनारूप जो कर्मचेतना तथा कर्मफलचेतना, उसके किसी भी अंश को धर्मी जीव अपनी ज्ञानचेतना में नहीं मिलाता, इसकारण वह उसका कर्ता या भोक्ता भी परमार्थ से नहीं है; ज्ञानचेतनारूप परिणमता हुआ वह मोक्ष को साधता है और सादि-अनंत काल आनंदरस को पीता है।

जैसे, बड़े लोग मंगल प्रसंग पर आशीर्वाद देते हैं कि तुम सुखी होवो, वैसे यहाँ आनंदरस का पान करनेवाले संत मोक्षसाधना के प्रसंग में मंगल आशीर्वाद देते हैं कि हे जीवो! तुम ज्ञानचेतनारूप परिणमो और सादि-अनंतकाल चेतन्यसुख को भोगा करो।

लीजिये.... यह सुखी होने का सच्चा आशीष! यह मंगल दीपावली की उत्तम बोनी!

हँसी ?—या—सत्य ?

युवान बंधुओं, यह एक युवान राजकुमार की कथा है... कि जिसने विवाहित होकर तुरंत ही वैराग्यवश हँसते-हँसते संसार का त्याग कर दिया। कहाँ आजकल के सिनेमा के कुसंस्कार ?—और कहाँ अपने पुराणों में वर्णित अपने महापुरुषों के उत्तम वैराग्यसंस्कार ! युवान राजपुत्र वज्रबाहु के वैराग्य की यह उत्तम कथा पढ़ करके भी तुम सिनेमा देखना—इत्यादि पापकार्यों को नहीं छोड़ दोगे क्या ?

जैनशासन में धर्मात्माओं के अंतर में संसार के प्रति कितनी निर्लेपता होती है ? तथा वैराग्य का कैसा प्रवाह उनके अंतर में निरंतर वर्तता रहता है ? वह प्रदर्शित करनेवाले वैराग्य-प्रसंग पुराणों में जगह-जगह दिये हुए हैं। ऐसे प्रसंग हम आत्मधर्म में कभी-कभी प्रस्तुत करते हैं। वह पढ़कर हे साधर्मीजन ! तुम अपने आत्मा में परम वैराग्य का सींचन करो। महापुरुषों ने तो सारे संसार को क्षणमात्र में छोड़ दिया है, तो तुम बहादुर-मुमुक्षु होकर पाप के कारणभूत प्रसंगों को क्यों नहीं छोड़ेंगे ? सुनो, भर जोबन अवस्था में थोड़े ही समय पहले विवाहित मनोदया रानी को तथा समस्त राजपरिवार को वज्रबाहु राजकुमार ने एक क्षण में छोड़ दिया... तो हे युवान बंधुओं ! तुम भी महावीर निर्वाण के इस २५०० वर्षीय महोत्सव में बहादुर हो जाओ... अपने जीवन को आत्मसंस्कारों से उन्नत बनाकर पाप से मुक्त हो जाओ... और वीरमार्ग में अपना हित कर लो।

भगवान ऋषभदेव के इक्ष्वाकुवंश में ऋषभदेव से लेकर मुनिसुव्रत तीर्थंकर तक के दीर्घकाल में असंख्यात राजा मोक्षगामी हुए। मल्लिनाथ भगवान के मोक्षगमन के बाद अयोध्यानगरी में विजयराजा के पौत्र वज्रवाहुकुमार हुए। हस्तिनापुर की राजपुत्री मनोदया के साथ उनका विवाह हुआ। विवाह के कुछ दिनों के बाद मनोदया का भाई उदयसुंदर अपनी बहिन के लेने को आया। जब मनोदया अपने भाई के साथ जाने लगी, तब वज्रबाहुकुमार भी मनोदया के प्रति तीव्र प्रेमवश उसके साथ-साथ ससुराल जाने लगा।

उदयसुंदर, मनोदया, वज्रबाहु आनंद करते-करते अयोध्या से हस्तिनापुर की ओर जा रहे हैं; साथ में उनके मित्र, २६ राजकुमारों तथा कई रानियाँ भी हैं। पर्वत और वन की रमणीय शोभा देखते-देखते सब चले जा रहे हैं। वहाँ युवान राजकुमार वज्रबाहु की दृष्टि अचानक स्थिर हो गई... अरे, दूर यह कोई अद्भुत शोभा दिखाई देती है-वह क्या है! क्या यह वृक्ष का थड़ है? सुवर्ण का थंभ है? या कोई मनुष्य खड़ा है? कुछ पास में जाकर देखा; तो देखते ही कुमार आश्चर्यचकित हो गये—अहा! नग्न दिगम्बर मुनिराज ध्यान में खड़े हैं... आँखें बन्द और हाथ लटकते-दुनियों को भूलकर आतमा की अनुभूति में मग्न होकर कोई अद्भुत मोक्षसुख का वेदन कर रहे हैं... मानों शांतरस के समुद्र में मशगूल हो। यद्यपि तप के कारण शरीर क्षीण है, तथापि चैतन्य के तेज का प्रताप सर्वांग में झलक रहा है... हिरन और सिंह शांत होकर उनके समीप बैठे हैं। अरे, इनकी शांतमुद्रा वन के पशुओं को भी कैसी प्रिय लगती है—कि वे भी शांत होकर बैठ गये हैं।

मुनि को देखकर वज्रकुमार विचार करते हैं कि—वाह रे वाह, धन्य है मुनि का जीवन! वे आनंद से मोक्ष को साध रहे हैं; मैं तो संसार के कीचड़ में फँसा हूँ, और विषयभोगों में मग्न हो रहा हूँ। इन भोगों से छूटकर मैं भी ऐसी योगदशा धारण करूँ, तभी मेरा जन्म कृतार्थ होगा। वर्तमान में तो, सम्यक् आत्मभान होन पर भी, जैसे कोई चंदन का वृक्ष विषधर से लिपट रहा हो, वैसे मैं विषय-भोगों के पापों से घिरा हुआ हूँ। जिसप्रकार कोई मूर्ख पर्वत के शिखर पर चढ़कर सो जाये... उसीप्रकार मैं पाँच इंद्रियों के भोगरूप पर्वत के भयंकर शिखर पर सो रहा हूँ।—धिक्कार है भवभ्रमण करानेवाले इन भोगों को! अरे, एक स्त्री में आसक्त होकर मोक्षसुंदरी की साधना में मैं प्रमादी हो रहा हूँ... इस क्षणभंगुर जीवन का क्या भरोसा? मुझे तो अब प्रमाद छोड़कर ऐसी मुनिदशा धारण करके मोक्षसाधना में लग जाना योग्य है।

— ऐसा विचार करते-करते वज्रबाहु की दृष्टि तो मुनिराज पर स्थिर हो गई है... वह मुनिभावना में ऐसा लीन हो रहा है कि आसपास में उदयसुंदर और मनोदया खड़े हैं, उनका भी उसे ध्यान नहीं रहा... बस! टकटकी लगाकर मुनि की ओर ही देख रहा है, और उसी की भावना भा रहा है।

यह देखकर वज्रबाहु का साला उदयसुंदर मुलकता हुआ हास्यवचन कहने लगा

कि—अरे कुँवरजी! इसप्रकार निश्चल होकर मुनि की ओर आप क्या देख रहे हो?—क्या आप भी ऐसी मुनिदशा अंगीकार करना चाहते हो?

वज्रकुमार को तो मानो इच्छित वस्तु मिल गई; तुरंत ही उसने उत्तर दिया—वाह भाई! आपने बहुत ही अच्छी बात बतायी! मेरे मन में जो भाव थे, वही आपने प्रगट किये। अब आपका भाव क्या है—वह भी कहो।

उदयसुंदर ने तो हँसी की बात समझकर कहा—कुँवरजी! जैसे आपके भाव हैं, मेरे भी वैसे ही हैं! यदि आप मुनिदीक्षा ग्रहण करते हो तो मैं भी आपके साथ ही मुनिदीक्षा लेने को तैयार हूँ। देखना, आप दीक्षा लेने से पीछे मत हठ जाना! (उदयसुंदर के मन में तो अभी भी ऐसा था कि वज्रकुमार तो मनोदया के प्रति तीव्र रागी हैं,—वह कहाँ दीक्षा लेनेवाला है? इसलिये उदयसुंदर ने हँसी-हँसी में ऊपर कहे अनुसार बोल दिया... अथवा 'शकुन के अनुसार शब्द निकल जाते हैं' इस कहावत के अनुसार वज्रकुमार के उत्तम भवितव्य से प्रेरित होकर उसे वैराग्य जागृत करनेवाले शब्द निमित्तरूप में आ गये...)

उदयसुंदर की बात सुनते ही बहादुर मुमुक्षु वज्रकुमार के मुख से वज्रबाण जैसे वचन निकले—बस, मैं तैयार हूँ... अभी ही मैं इन मुनिराज के समीप जाकर दीक्षा अंगीकार करूँगा... इस संसार और भोगों से उदास होकर मेरा चित्त अब मोक्ष में ही लगा है; संसार या संसार की ओर के भाव अब मुझे स्वप्न में भी नहीं चाहिये।...आप सब खुशी से सोधावो, ...मैं तो अब मुनि होऊँगा और यही रहूँगा।

जैसे पर्वत पर वज्र गिरे, उसीप्रकार वज्रबाहु के शब्दों को सुनकर उदयसुंदर पर मानों वज्र गिरा। वह तो चकित-सा रह गया!—अरे यह क्या हुआ! 'हँसी सत्य बन रही है!'

वज्रकुमार तो दृढ़ चित्त से हाथी पर से उतरा; विवाह के वस्त्राभूषण उतारकर, वैराग्यपूर्वक मुनिराज की ओर जाने लगा।

मनोदया ने कहा : अरे स्वामी! आप यह क्या कर रहे हो?

उदयसुंदर भी आँसू डारता हुआ कहने लगा—अरे कुँवरजी! मैं तो हँसते-हँसते कहा था, हास्य के वचन को आप सत्य कैसे मान रहे हो? हास्य करने में मेरी भूल हुई, सो मुझे क्षमा करो... परंतु आप दीक्षा मत लो...

तब वैरागी वज्रकुमार मधुर शब्दों से कहने लगे—हे उदयसुंदर! तुम मेरे कल्याण का कारण बने हो। मुझे जागृत कर तुमने मुझ पर उपकार किया है। इसलिये तुम दु:ख छोड़ो। मैं संसार-कूप में डूब रहा था, उसमें से तुमने मुझे बचाया है, तुम मेरे सच्चे मित्र हो। जीव जन्म-मरण करता हुआ अनादि से संसार में भ्रमण कर रहा है, स्वर्ग के दिव्य विषयों में भी उसे कहीं सुख नहीं मिला, तो दूसरे विषयों की क्या बात! यह शरीर और संयोग सब क्षणभंगुर हैं। बिजली की चमकार के समान जीवन, उसमें यदि आत्महित न किया तो यह अवसर चला जायेगा। विवेकी पुरुषों को स्वप्न समान इस संसार-सुखों में मोहित होना योग्य नहीं। हे मित्र! तुम्हारी हँसी भी मुझे तो कल्याण का ही कारण हुई है। हँसते-हँसते भी यदि उत्तम औषधि ली जाये तो क्या वह रोग को नष्ट नहीं करती? करती ही है; उसीप्रकार हँसते-हँसते भी तुमने मुनिदशा की बात की, वह मुनिदशा भव-रोग को हरनेवाली और आत्मकल्याण करनेवाली है; इसलिये मैं अवश्य ही मुनिदशा अंगीकार करूँगा। तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा तुम करो।

उदयसुंदर समझ गया कि अब वज्रबाहुकुमार को रोकना मुश्किल है... अब वह दीक्षा ही लेंगे। तथापि कदाचित् मनोदया के प्रेम के वश होकर वह रुक जायें—ऐसा सोचकर उसने अंतिम प्रार्थना की—हे कुमार! इस मनोदया के खातिर भी आप रुक जाओ.... तुम्हारे बिना मेरी बहिन अनाथ हो जायेगी... इसलिये उस पर कृपा करके तुम रुक जाओ... अभी दीक्षा न लो... न लो।

परंतु, मनोदया भी तो वीरपुत्री थी... वह कहीं कायर होकर रोने न बैठी... उसने भी दृढ़ चित्त से कहा—हे बंधु! तुम मेरी चिंता मत करो। आप जिस मार्ग पर जायेंगे—मैं भी उसी मार्ग पर जाऊँगी। वे विषय-भोगों से छूटकर आत्मकल्याण करेंगे, तो क्या मैं विषयों में ही जीवन खो डालूँगी?—नहीं; मैं भी उन्हीं के साथ संसार छोड़कर अर्जिका बनूँगी और आत्मा का कल्याण करूँगी। धन्य भाग्य से मुझे आत्महित का ऐसा सुंदर अवसर मिला है। अत: हे भाई! ना रोको, तुम किसी को ना रोको! कल्याण के मार्ग पर जाते हुए हमको न रोको! मोक्ष के मार्ग पर जानेवाले को संसारमार्ग में न खींचो।

अपनी बहिन की ऐसी दृढ़ता देखकर अब उदयसुंदर के भावों में भी अचानक परिवर्तन हो गया। उसने देखा कि हँसी सत्य बन रही है... उसने कहा—वाह वज्रकुमार! वाह

मनोदया बहिन! धन्य है आपकी उत्तम भावनाओं को! आप दोनों यहाँ दीक्षा ग्रहण करेंगे—तो क्या मैं आपको यहाँ छोड़कर वापिस राज्य में जाऊँगा? नहीं; मैं भी आपके साथ ही मुनिदीक्षा ग्रहण करूँगा।

साथ में आये हुए दूसरे राजकुमार यह सब वार्तालाप सुन रहे थे, वे भी एकसाथ बोल उठे कि हम भी वज्रकुमार के साथ दीक्षा लेंगे! और दूसरी ओर महिलाओं के समूह में से राजरानियों की भी आवाज आयी कि हम सब भी मनोदया के साथ अर्जिकाव्रत ग्रहण करेंगी।

बस, चारों ओर खलबली मच गई... गंभीर वैराग्य का वातावरण छा गया। राजसेवक तो घबराहट से देखते ही रह गये कि यह सब क्या हो रहा है? इन सब राजकुमारों और रानियों को यहाँ छोड़कर हम अकेले राज्य में वापिस किसप्रकार जायें? वापिस जाकर राजकुमारों के माता-पिता से क्या जवाब देंगे?

—वे विचार में पड़ गये। अंत में एक मंत्री ने राजपुत्रों से कहा—हे कुमारों! तुम्हारे वैराग्य की भावना को धन्य है... परंतु हमें आपत्ति में न डालो... तुम सब हमारे साथ वापिस चलो और माता-पिता की आज्ञा ले करके बाद में दीक्षा लेना...

वज्रकुमार ने कहा—अरे संसारबंधन से छूटने का यह अवसर मिला, तब माता-पिता से पूछने को कौन रुके? यदि हम वहाँ पर जायेंगे तो माता-पिता मोहवश होकर हमें वहाँ रोक लेंगे; इसलिये तुम सब जाओ, और माता-पिता से समाचार कह देना कि तुम्हारे पुत्र मोक्ष साधने को गये हैं, अतः आप दुःखी न होना।

तब मंत्री ने कहा—तुम हमारे साथ भले न आओ परंतु हम जाकर जब तक माता-पिता को समाचार देते हैं, तब तक तो तुम रुक जाओ...

राजपुत्रों ने कहा—अरे, अब एकक्षण भी हम इस संसार में रहना नहीं चाहते; जिसप्रकार प्राण चले जाने पर मृतक शरीर शोभा नहीं देता, उसीप्रकार हमारा मोह छूट जाने पर अब यह संसार एकक्षण मात्र भी हमें नहीं सुहाता। ऐसा कहकर सब कुमार चलने लगे... और मुनिराज के पास आये...

गुणसार-मुनिराज के प्रति हाथ जोड़कर विनयपूर्वक नमस्कार करके वज्रकुमार ने

कहा—हे स्वामी! मेरा चित्त संसार से अति भयभीत है; आपके दर्शन से मेरा मन पवित्र हुआ है, और अब मैं भवसागर को पार करनेवाली ऐसी भगवती जिनदीक्षा अंगीकार करके इस संसार के कीचड़ में से निकलना चाहता हूँ—अतः हे प्रभो! मुझे दीक्षा दीजिये।

जो चैतन्य साधना में मग्न हैं, शत्रु-मित्र जिन्हें समान हैं, और जो अभी सातवें में से छठवें गुणस्थान में आये हैं—ऐसे उन मुनिराज ने वज्रकुमार की उत्तम भावना को जानकर कहा—हे भव्य! तुम धन्य हो। लो यह मोक्ष के कारणरूप भगवती जिनदीक्षा! तुम अत्यंत निकट भव्य हो इसलिये तुम्हें मुनिव्रत की भावना जागृत हुई।—ऐसा कहकर आचार्यदेव ने वज्रकुमार को मुनिदीक्षा दी। वज्रकुमार ने अपने हाथों से कोमल बालों का केशलोंच किया, राजपुत्री और रागपरिणति दोनों का त्याग कर दिया; देह का भी स्नेह छोड़कर चैतन्यधाम में स्थिर हुए, और शुद्धोपयोगी होकर मुनिदशा प्रगट की। वज्रकुमार के साथ उदयसुंदर आदि २६ राजकुमार भी जिनदीक्षा लेकर मुनि हुए। मनोवती ने भी पति और भाई का मोह छोड़कर समस्त आभूषणों का त्याग कर वैराग्यपूर्वक आर्यिकव्रत धार किया, साथ में कई रानियाँ भी अर्जिका हुईं, और एकमात्र सफेद साड़ी से ढँके हुए देह में चैतन्य की साधना द्वारा सुशोभित होने लगीं। रत्नमणि के आभूषण की अपेक्षा शुद्धोपयोग के आभूषण से आत्मा अधिक सुशोभित होता है। इसप्रकार वज्रकुमार आदि ये सब मुनिदशा में शुद्धोपयोग से सुशोभित होने लगे।

धन्य है उन वैरागी राजपुत्रों को!

जब वज्रकुमार आदि की दीक्षा का समाचार अयोध्या में पहुँचा, तब उसके दादा विजय महाराज भी संसार से विरक्त हुए। अरे, ऐसा नवविवाहित युवान पौत्र संसार को छोड़कर मुनि हुआ और मैं वृद्ध होते हुए भी अभी संसार के विषय-भोगों को नहीं छोड़ता हूँ! इस राजकुमार ने तो संसार-भोगों को तृणवत् समझकर छोड़ दिया और मोक्ष के अर्थ शांतभाव में चित्त को स्थिर किया है।—धन्य है उनको! ऊपर से सुंदर दिखनेवाले विषयों का फल बहुत ही विषम है। युवानदशा में देह का जो रूप था, वह वृद्धावस्था में कुरूप हो गया। देह और विषय तो क्षणभंगुर हैं; यह जानता हुआ भी प्रमादी होकर मैं आजतक उसमें मग्न रहा! अरे, युवान पौत्र के दीक्षा ले लेने पर भी यदि मैं विषय-भोगों में पड़ा रहूँ तो मेरे जैसा मूर्ख कौन होगा?—ऐसा

विचारकर, बारह वैराग्य भावनाओं को भाकर, सभी जीवों के प्रति क्षमाभावपूर्वक वे विजयराजा भी जिनदीक्षा लेकर मुनि हुए... पौत्र के पथ पर दादा ने प्रयाण किया।

धन्य जैनमार्ग! धन्य मुनिमार्ग! और धन्य उस मार्ग पर चलनेवाले आत्मा!

- विजयराजा ने दीक्षा लेते समय वज्रकुमार के भाई पुरंदर को राज्य दिया।
- पुरंदर राजा ने अपना राज्य अपने पुत्र कीर्तिधर को सौंप कर दीक्षा ली।
- कीर्तिधर ने भी, पंदरह दिवस के पुत्र सुकौशलकुमार को राजतिलक करके जिनदीक्षा ले ली।
- उन सुकौशलकुमार ने भी (गर्भस्थ बालक को राजतिलक करके) अपने पिता के पास ही दीक्षा अंगीकार की... इतना ही नहीं परंतु उसकी माता—जो कि मरकर व्याघ्री हुई थी–उसने उसको खाया, तथापि वे आत्मध्यान से चलायमान न हुए और अंत में केवलज्ञान प्रगट करके मोक्ष पधारे।

उनकी भी कथा फिर कभी कहेंगे। —जय महावीर!

एक मजेदार बात

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व हमारी इस भारतभूमि में भगवान महावीर साक्षात् अरिहंत पद में विराजमान थे; यह तो हम सब जानते ही हैं।—परंतु दूसरी बात यह जानकर आपको प्रसन्नता होगी कि, उस समय महावीर भगवान अकेले ही नहीं, अपितु उनके ही सदृश अन्य सात सौ (७००) अरिहंत भगवान भी एकसाथ हमारी इस भरतभूमि में विचरते थे।

अहो, एकसाथ ७०० केवलज्ञानी अरिहंत जिनेन्द्र भगवंतों के दर्शन हो—और वह भी हमारे इस भारत देश में—मात्र ढाई हजार वर्ष के पहले, यह कितनी मजेदार बात है! 'वाह भाई वाह!'

णमो लोए सव्व अरिहंताणं।

वीरनिर्वाण-महोत्सव में वीर-बालकों का उत्साह

भगवान महावीर के २५०० वर्षीय निर्वाणमहोत्सव के इस महान अवसर में ढाई हजार पैसे (पच्चीस रुपये) बचाने की योजना में बालक (-युवानों एवं बड़ों भी) बहुत उत्साह से भाग ले रहे हैं; आज हमारे युवान-विद्यार्थी बंधुओं जाग उठे हैं; अत: अब कोई यह नहीं कह सकता कि 'विद्यार्थी-युवान वर्ग धर्म में भाग नहीं लेते।' अपितु, आज तो ऐसी उल्टी गंगा बहने लगी है कि—हमारे बालकों-युवानों जो थोकबंध धार्मिक साहित्य पढ़ना चाहते हैं, वह पूरा पाड़ने की व्यवस्था हम नहीं कर सकते हैं; हमारे बालकों को-युवानों को थोकबंध प्राचीन साहित्य आधुनिक ढंग से प्राप्त होता रहे-यह जिम्मेदारी बड़ों के ऊपर आकर खड़ी है। हमारा प्राचीन साहित्यनिधान हमारी नयी पीढ़ी को हम कब दिखायेंगे? बालकों जागृत हुए हैं, युवानों जाग उठे हैं, तो अब हमें भी जागृत होकर उनके लिये ऐसे साहित्य का थोकबंध निर्माण करके उनके हाथ में देना है—जिसको वे उत्साह से पढ़ सकें। २५००वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में, ऐसी प्रवृत्ति में उत्साह पूर्वक अपना भी साथ देने के लिये, जिनकी ओर से ढ़ाई हजार पैसे (पच्चीस रुपये) आये हैं, उनके नाम (गतांक से आगे) यहाँ दिया जाता है:— (आप भी भेज सकते हैं— पता : आत्मधर्म बालविभाग, सोनगढ़-३६४२५०)

१०४ राजेशकुमार रतिलाल जैन, दादर, बम्बई
१०५ राजेश हिम्मतलाल जैन, दादर, ''
१०६ स्मिताबेन बाबुलाल जैन, खार, ''
१०७ जगदीश बाबुलाल जैन, खार, ''
१०८ किरण बाबुलाल जैन, खार, ''
१०९ ज्योतिबेन बाबुलाल जैन, खार, ''
११० रूपाबेन चंदकांत जैन, दादर, ''
१११ मीराबेन केवलचंद जैन, दादर, बम्बई
११२ परेश प्रकाशचंद जैन, दादर, ''
११३ बिन्देश प्रकाशचंद जैन, दादर, ''
११४ आशिष प्रकाशचंद जैन, दादर, ''
११५ वर्षाबेन, राजचंद्र, जागृति, चैतन्य, ''
११६ दीगीशभाई चीमनलाल जैन, ''
११७ अमीताबेन जितुभाई जैन, ''
११८ केतनकुमार, विरेन्द्र, श्रेयांस, ''

११९ नैनेश, चेतन, विजय, भावना डायालाल, बम्बई
१२० संजय, भरत, गीताबेन चंपकलाल, बम्बई
१२१ भाविन चंद्रवदन जैन, ''
१२२ पारुलबेन अनीषकुमार जैन, ''
१२४ भरतकुमार मनुभाई जैन, ''
१२५ सुकन्या निरंजनभाई, जैन, माटुंगा, बम्बई
१२६ हरगोविंददास मोतीचंद जैन, ''
१२७ उषाबेन नटवरलाल जैन, ''
१२८ जवेरबेन जैन, ''
१२९ समीबेन तथा संजतभाई जैन, ''
१३० दर्शनाबेन मनहरलाल जैन, दादर, बम्बई
१३१ अभयकुमार मनहरलाल जैन, दादर, बम्बई
१३२ दीगीश जगदीशभाई जैन, ''
१३३ मगनलाल नारायणजी जैन, ''
१३४ संजयकुमार रमणीकलाल जैन, ''
१३५ कुमुदबेन हिम्मतलाल जैन, ''
१३६ लाभुबेन अनिलकुमार जैन, ''
१३७ वीणाबेन जगदीशभाई जैन, ''
१३८ प्रभाबेन संघराजका जैन, ''
१३९ अंजवालीबेन प्राणलाल जैन, ''
१४० कंचनबेन गुह्या जैन, दादर, बम्बई
१४१ मधुबेन किशोरभाई जैन, दादर, बम्बई
१४२ पन्नाबेन जीतेन्द्रकुमार जैन, ''
१४३ वसुबेन प्रकाशचंद्र जैन, दादर, बम्बई
१४४ मालतीबेन अमृतलाल जैन, ''
१४५ प्रदीपभाई प्राणलाल जैन, दादर, बम्बई
१४६ पंकजभाई प्राणलाल जैन, दादर, बम्बई
१४७ लताबेन प्राणलाल जैन, दादर, बम्बई
१४८ दक्षाबेन प्राणलाल जैन, दादर, बम्बई
१४९ राजू मनहरकांत जैन, दादर, बम्बई
१५० चेतना बृजलाल जैन, दादर, बम्बई
१५१ अक्षय बृजलाल जैन, दादर, बम्बई
१५२ सुकेतु रश्मीकांत जैन, दादर, बम्बई
१५३ निलेशकुमार अनिलभाई जैन, ''
१५४ देवांगकुमार अनिलभाई जैन, ''
१५५ समीर धनपालभाई जैन, बम्बई
१५६ वसंतकुमार वीरचंद जैन, बम्बई
१५७ धवलकुमार सर्वदमन जैन, बम्बई
१५८ जनककुमार पंकजकुमार जैन, बम्बई
१५९ प्रफुलभाई न्यालचंद जैन, बम्बई
१६० सविताबेन बाबूलाल जैन, दादर, बम्बई
१६१ लताबेन, जयंत, महेश जैन, ''
१६२ चेतन, अर्चना, किशोरचंद्र जैन, ''
१६३ दिव्याबेन, ज्योतिबेन, चेतना, तृप्तीबेन जैन, बम्बई
१६४ राजू, रूपाबेन, सोनल, रतीलाल जैन, बम्बई

१६५ वसंतलाल मणीलाल जैन, दादर, बम्बई

१६६ धीरेनभाई, सुलेखाबेन रजनीकांत, बम्बई

१६७ प्रेमचंद (खेमराज दुलीचंद), खैरागढ़

१६८ शैलेशकुमार तथा जयेशकुमार लहेरचंद जैन, सावरकुंडला

१६९ लीलावतीबेन पोपटलाल जैन, गोंडल

१७० वीनलबेन रोमेशकुमार जैन, अहमदाबाद

१७१ वीरजु भरतकुमार कामदार, अहमदाबाद

१७२ दीपककुमार कनुभाई जैन, अहमदाबाद

१७३ जागृतीबेन चंद्रकांत जैन, अहमदाबाद

१७४ प्रीतिबेन तथा पल्लवीबेन, बोरीवली, बम्बई

१७५ कुंजलबेन भरतकुमार सेठ, राजकोट

१७६ जीतेन्द्र मणिलाल सेठ, बम्बई

१७७ जागृतीबेन मणिलाल सेठ, बम्बई

१७८ राजेश बसंतलाल सेठ, बम्बई

१७९ अनीताबेन बसंतलाल सेठ, बम्बई

१८० सुनीलकुमार प्रवीणचंद्र कोठारी, राजकोट

१८१ धारिणीबेन प्रवीणचंद्र कोठारी, राजकोट

१८२ कुमारपाल कान्तीलाल, मुलुन्द, बम्बई

महावीर-परिवार (छह बातों का संकल्पपत्रक)

महावीर भगवान के ढाई हजारवें निर्वाणमहोत्सव में मेरा संकल्प—

— प्रतिदिन जिनमंदिर जाऊँ (- यदि एक मील के भीतर हो।)
— आत्महित के लक्ष से प्रतिदिन आधा घंटा शास्त्र पढ़ूं।
— जैनधर्म के ही सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को मानूं।
— रात्रि के समय भोजन नहीं करूँ (-जल का अपवाद।)
— बिना छना पानी नहीं पीऊँ। — लौकिक सिनेमा नहीं देखूँ।

२५४ रतिलाल चतुरभाई, घाटकोपर
२५५ चुन्नीलालजी जैन, बामौरा
२५६ पंडित दयाचंदजी, बामौरा
२५७ बाबूलाल कठरयाजी, बामौरा
२५८ पंडित सुंदरलालजी, बामौरा
२५९ हुकमचंदजी बड़ूकर, बामौरा
२६० बाबूलाल मुड़ा, बामौरा
२६१ सिं. भोगचंदजी, बामौरा
२६२ मु. फूलाबाई जोजे कुंदनलाल, बामौरा
२६३ मन्नीबाई जोजे टीकाराम, बामौरा
२६४ मु. केशरबाई जोजे भागचंद समेया, बामौरा
२६५ कस्तूरीबाई जोजे बाबूलाल वैद्य, बामौरा
२६६ रतनीबाई जोजे हरलाल नायक, बामौरा
२६७ श्रीमती सोनाबाई धर्मपत्नी चुनीलाल, बामौरा
२६८ श्रीमती सुमती बाबूलाल गुडा, बामौरा
२६९ श्रीमती बाई (धर्मपत्नी गुलाबचंदजी), बामौरा
२७० श्रीमती पुष्पाबाई (कोमलचंद सिं.), बामौरा
२७१ श्रीमती केशरबाई (ताराचंदजी शराफ), बामौरा
२७२ मु. दुर्गाबाई जोजे दमणलालजी, बामौरा
२७३ मु. चिरोंजीबाई जीजे दमणलाल वैद्य, बामौरा
२७४ मु. हरबाई जोजे बिहारीलाल, बामौरा
२७५ मु. खेमाबाई जोजे मोहनलाल, बामौरा
२७६ श्री दमणलालजी बजाज, बामौरा
२७७ श्रीमती सुशीलाबाई (मदनलाल), बामौरा
२७८ श्रीमती कमलाबाई (दीनानाथजी), बामौरा
२७९ श्रीमती संपतबाई बुखारीया (कपूरचंदजी), बामौरा
२८० नेमिचंद राजाराम जैन, मगरोनी
२८१ सुगनचंद प्यारेलाल जैन, गुना
२८२ राजमलजी जैन, गुना
२८३ राजारामजी वारेलालजी, गुना
२८४ फूलाबाई प्यारेलालजी, गुना
२८५ जिनदास भगवान जैन, वालसा
२८६ जीवनलालजी, कानपुर
२८७ भारतीबेन एम. जैन, बेंगलोर

२८८ कीरणबेन जैन, जबेरा
२८९ कल्पनाबेन जैन, जबेरा
२९० मातेश्वरी रमेशकुमारजी सिंघई, जबेर
२९१ लीलाबतीबेन पोपटलाल जैन, गोंडल
२९२ अरुणाबेन प्रेमचंदभाई जैन, लाठी
२९३ मंजुलाबेन धीरजलाल जैन, लाठी
२९४ लाभुबेन छोटालाल जैन, लाठी
२९५ लाभुबेन जयंतिभाई जैन, लाठी
२९६ सविताबेन हिम्मतभाई जैन, लाठी
२९७ जेकुरबेन मोहनभाई जैन, लाठी
२९८ रोमेश बाबूभाई जैन, लाठी
२९९ से ३२० मुमुक्षु भाई-बहिन, दाहोद
३२१ मनहरलाल पोपटलाल सेठ, बेंगलोर
३२२ मंजुलाबे मनहरलाल सेठ, बेंगलोर
३२३ जीतेन्द्र मनसुखलाल जैन, सोनगढ़
३२४ ललित मनसुखलाल जैन, सोनगढ़
३२५ कांतीबेन मथुरालाल जैन, कुशलगढ़
३२६ नगीनदास मोतीचंद गांधी, चमराकरगीर
३२७ गुलाबबेन नगीनदास गांधी, अमरापुर (गोर)
३२८ जयश्रीबेन नगीनदास गाँधी, ''
३२९ रंजनबेन नगीदनदास गाँधी, ''
३३० मीनाक्षीबेन नगीनदास गाँधी, ''
३३१ किर्तीद्राबेन नगीनदास गाँधी, ''
३३२ मुकेश नगीनदास गाँधी, ''
३३३ भीखू शामलजी देशई, अमरापुर (गोर)
३३४ कमलाबेन एस. पारेख, बम्बई-४
३३५ ब्र. सोहनलाल मोतीलाल जैन, धनगाँव
३३६ खुशालचंद जैन, बीना
३३७ दीपचंद जैन, दलपतपुर
३३८ छबलबेन पुरुषोत्तम कामदार, बोटाद
३३९ मंजुलाबेन शीवलाल डगली, बोटाद
३४० मुरीबेन दामोदरदास गाँधी, बोटाद
३४१ कंचनबेन हिम्मतलाल गोपाणी, बोटाद
३४२ से ३५३ चौदह मुमुक्षु भाई-बहिन, पटेरा (कुंडलपुर)
३५४ से ३८३ तीस मुमुक्षु भाई-बहिन, सेमारी (राजस्थान)
३८४ पंडित केसरीलालजी जैन, जयपुर
३८५ रतनबहन (केसरीलालजी) जैन, जयपुर
३८६ जानकीबाई चवरे, लालबाग
३८७ रूपचंदजी मिश्रीलालजी, हाट पोपल्वा
३८८ गंगाबेन जैन, सोनगढ़
३८९ विजयाबेन जैन, सोनगढ़
३९० गोकुलचंद जैन, लवाण
३९१ नाथूलालजी जैन, लवाण
३९२ रामेश्वरजी जैन, लवाण
३९३ सत्यनारायण जैन, लवाण
३९४ रमेशचंद जैन, लवाण
३९५ कांतादेवी जैन, लवाण
३९७ अरुण जैन, आरौल
३९८ हजारीलाल जैन, आरौल
३९९ कांतीबाई जैन, आरौल
४०० अर्चनाबेन जैन, आरौल

निर्वाणमहोत्सव के इस वर्ष में उपरोक्त छह बातों के पालन का संकल्प करनेवाले भाई-बहिनों के जो नाम अब तक आये हैं, उनकी यादी यहाँ दी गई है; (शेष अगले अंक में)

वैसे तो प्रत्येक गाँव में बहुत से मुमुक्षु भाई-बहिन इन छह बातों का पालन पहले से करते ही हैं, किंतु वे अपना नाम छापने को नहीं दे रहे हैं। हमारे बहुत से युवान लोग भी इन छह बातों का पालन करने के उत्सुक हैं; आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस विभाग में छह बोल का पालन करनेवालों में उमराला-बड़ौदा आदि के कई हरिजन-बंधु एवं राजपूत आदि भी हैं—जो कि जैनधर्म का संस्कार पाकर के जीवन को सदाचार की ओर ऊँचे उठा रहे हैं। वीरभगवान के २५०० वर्षीय महान उत्सव में हमें अपना जीवन ऊँचा-बहुत ऊँचा उठाकर मोक्ष की ओर ले जाना है। हम वीर के संतान शूरवीर हैं। कुसंस्कार छोड़कर सदाचार को अपनाना हमारे लिये कोई कठिन बात नहीं अपितु यह तो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

पढ़िये और खोजिये

हमें प्रसन्नता है कि इस विभाग में २५० से अधिक जिज्ञासुओं ने बड़े उत्साह के साथ भाग लिया है; उत्तर भेजनेवाले सभी के उत्तर सत्य हैं। युवकवर्ग ने भी विशेष उत्साह दिखाया है, और स्वाध्याय-प्रेरक यह आयोजन का स्वागत किया है। धन्यवाद! आईए, यह अंक भी पढ़िये और निम्न दश वाक्य पूरे कीजिये।

(१) श्रीगुरु के पास में जाकर विनयवंत शिष्य ने पूछा—हे प्रभो!.....

(२) उल्लासपूर्वक स्वभाव सुख का स्वीकार करते हुए मुमुक्षु सम्यग्दर्शन पाकर.....

(३) वीरनाथ के मार्ग में ज्ञान का लक्ष्य.....

(४) ज्ञानस्वभाव का निर्णय करनेवाला जीव आनंदपूर्वक.....

(५) शुद्धधर्म कहो या मोक्ष का मार्ग कहो, उसका मूल.....

(६) अहा, कुन्दकुन्दस्वामी ने दिल खोलकर.....

(७) क्या तूने जीव को जड़ की क्रिया करता हुआ कभी देखा है ?.....

(८) 'आपके' आत्मा का यह एक आश्चर्यकारी चमत्कार है। ('आपके' माने किसके ?)

(९) ज्ञानी आनंद से नचाते हैं—(किसको ?)

(१०) इस पूरे अंक में 'महावीर' शब्द कितनी बार आया है, यह गिनती करके लिखें। (मात्र 'महावीर' शब्द को ही गिनती में लेना, वर्द्धमान, वीरनाथ इत्यादि शब्द नहीं लेना।) (उत्तर २० दिसम्बर तक ही भेजें।)

उत्तर के साथ आपका पूरा पता लिखना न भूलें।

भेजने का पता—

सम्पादक : आत्मधर्म, सोनगढ़ ३६४२५० (सौराष्ट्र)

आत्मस्वभाव के अप्रतिघातरूप परम-इष्ट सत्यसुख और ऐसे इष्ट की प्राप्ति का मार्ग

आत्मा के पूर्ण सुख को प्राप्त परमात्मा वर्द्धमानदेव मोक्ष पधारे, उसके ढाई हजार वर्ष की पूर्णता का महान मंगलमहोत्सव अभूतपूर्व उत्साह के साथ भारतभर में प्रारंभ हो चुका है। जो परम सुख अर्थात् जो इष्टपद प्रभु ने प्राप्त किया, वैसा ही परमसुख व परम इष्ट हमें भी कैसे प्राप्त हो-यह बात कुन्दकुन्दस्वामी ने प्रवचनसारादि परमागम में प्रसिद्ध की है; मुमुक्षु जीव उसी मार्ग से परम सुख को पाओ, और मोक्ष का उत्सव आनंद से मनाओ।

जैसे ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, वैसे सुख भी आत्मा का स्वभाव है। उसका घात करनेवाला मोह-राग-द्वेष है। ज्ञानस्वभावी आत्मा की अनुभूति के द्वारा तथा शुद्धोपयोग के

द्वारा जब मोह-राग-द्वेष का क्षय होता है, तब आत्मा के स्वभाव का घात नहीं होता; इसप्रकार शुद्धोपयोग से स्वभाव-प्रतिघात का अभाव होने से आत्मा का ज्ञान व सुख अपने स्वाभाविकरूप से विकसित हो जाते हैं; ऐसे सर्वज्ञ होनेवाले आत्मा को अपने स्वभाव से ही परिपूर्ण ज्ञान तथा सुख होता है; अपने स्वभाव से अतिरिक्त अन्य कोई सुख का साधन नहीं है।

अभेदविवक्षा में जो ज्ञान है, वही सुख है; ज्ञान और सुख ये दोनों आत्मा के स्वभाव ही है। ऐसे स्वभाववाली निजवस्तु में बसना—उसमें लीन होकर रहना, यही स्वघर में वास्तु है, और उसमें परम सुख है। सम्यग्दृष्टि ने ही ऐसा स्वघर देखा है।

भाई, तेरा सुख तेरे में है, तेरे से बाहर नहीं। सुख की प्राप्ति अंतर की अनुभूति में होती है, बाहर से नहीं होती। सुखस्वभाव कहो या ज्ञानस्वभाव कहो; सुखस्वभाव कहो या आत्मा कहो; ऐसे स्वभावरूप आत्मा जिसकी प्रतीत में आया, वह जीव अपना सुख अपने में ही देखता है। सुख जीव को इष्ट है और जब अपना सुख अपने में देख लिया, तब सुख के लिये बाहर में भटकना अटक गया; जीव सुखरूप ऐसा अपने आनंदमय-चैतन्यधाम में आकर बसा।

अहा, चैतन्यतत्त्व—जिसका सर्वज्ञस्वभाव, उसके अलौकिक महिमा का क्या कहना? वह तो अनुभव की चीज़ है। उसका स्वीकार करते ही पर्याय में उसका प्रवाह आता है, और पूर्णता होने पर लोकालोक का जाननेवाला केवलज्ञान होता है। अहा, केवलज्ञान महान स्वतंत्र है, वह सर्वोत्कृष्ट मंगल है, और उसमें किंचित् भी अनिष्ट (मोहादि) नहीं है; पूर्ण सुखरूप इष्ट की उसमें प्राप्ति है। अहो, अरिहंतों को सर्व इष्ट की प्राप्ति है तथा दुःख का सर्वथा नाश है। और ऐसे अरिहंत के मार्ग में ही इष्ट प्राप्ति का सच्चा उपाय दिखलाया है।

आत्मा का इष्ट क्या है?—पूर्ण ज्ञान व पूर्ण सुख, वह इष्ट है, प्रिय है, सुंदर है; वही आनंदरूप है; यदि इसके सिवाय अन्यत्र कहीं भी जीव सुख मानता हो तो वह मूर्ख है।

ऐसे आत्मस्वभाव को लक्ष में लेकर के जो जीव साधक हुआ, उसे अतीन्द्रिय ज्ञान का अंश प्रगट हो चुका है, और उस अतीन्द्रियज्ञान के साथ में अतीन्द्रियसुख का भी अनुभव अभेदरूप से है। यह ज्ञान, यह सुख-ऐसा भेद अनुभूति में नहीं रहता; सुख के वेदन में अनंतगुण का स्वाद अभेद-एकरस भरा है। ऐसे आत्मा को स्वोन्मुख होकर जो जानता है, उसकी श्रद्धा करता है तथा उसमें लीन होता है, वह स्वयं उत्तम सौख्यरूप हो जायेगा—ऐसा

समयसार की अंतिम गाथा में आचार्यदेव ने कहा है। उसे सर्व इष्ट की प्राप्ति हो जाती है। जगत के जीवों के लिये यही परम इष्ट पद है।

अरे जीव! आत्मा के ऐसे स्वभाव का भरोसा तो कर, विश्वास तो कर! तेरे धर्म की सच्ची कमाई करनी हो तो ऐसे स्वभाव को लक्ष में ले। अभी भगवान महावीर के मोक्षगमन का २५०० वर्षीय जो महान उत्सव चल रहा है-इसमें यही खास करने का है। ऐसे आत्मा की समझ ही महावीरप्रभु का उपदेश है। जिसने स्वभाव की समझ की, उसने ही महावीरप्रभु की आज्ञा का स्वीकार किया, और उसने ही महावीरप्रभु के मोक्ष का सच्चा महोत्सव अपनी आत्मा में मनाया। इसके बिना अकेली बाहरी धूमधाम में आत्मा को धर्म की कमाई नहीं होती। शुभराग हो परंतु इससे मोक्षरूप इष्ट की प्राप्ति नहीं होती।

आत्मा को अनिष्ट क्या है ?—कि दु:ख तथा उसके कारणरूप अज्ञान और राग-द्वेष, वह अनिष्ट हैं।

आत्मा को इष्ट क्या है ? सुख; तथा उसके कारणरूप अतीन्द्रियज्ञान, वह इष्ट है। जिसने आत्मा का सुख जाना-माना-अनुभव किया, वह जीव धर्मी है; वह जीव अतीन्द्रियज्ञान द्वारा सुख के धाम ऐसे अपने परमात्मा के पास पहुँच गया है। अब उसे संसार में अन्यत्र कहीं भी सुख भासित नहीं होता; आत्मा के अतिरिक्त संसार में दूसरी जगह उसका चित्त मग्न नहीं होतहा, और दूसरा कोई उसे इष्ट नहीं लगता ('न खलु समयसारात् उत्तरं किंचित् अस्ति।') अरे, चैतन्यसुख की अतीन्द्रिय शांति का वेदन करनेवाला जीव, कषाय (शुभ या अशुभराग) के आताप में कैसे शांति मानेगा ? जिसप्रकार शीतल जल में रहनेवाली मछली धूप में या अग्नि में नहीं रह सकती, उसीप्रकार चैतन्य के शांत-शीतल अमृत सरोवर में केलि करनेवाले धर्मात्मा को शुभराग या अशुभराग कहीं नहीं सुहाता, उसमें कहीं शांति भासित नहीं होती। शांति का निवास (धाम) तो अपने में है।

देखो, पाँच पांडव यहाँ (शत्रुंजय पर) मुनिदशा में पधारे थे, अंतर में चैतन्य की शांति के धाम में प्रवेशकर महान सुख का अनुभव करनेवाले वे वीतरागी संत शत्रुंजय पर ध्यान में अपूर्व सुख का वेदन करते थे। वहाँ दुर्योधन के भानजे ने भयंकर अग्नि का उपसर्ग किया। पांडवों का शरीर जलने लगा परंतु युधिष्ठिर-भीम-अर्जुन तो देह एवं भाईयों का भी लक्ष

छोड़कर, चैतन्य की शांति के वेदन में ऐसे मग्न हुए कि उसी समय केवलज्ञान प्राप्त कर देहातीत सिद्धपद को प्राप्त हुए। दूसरे दो मुनियों को अपने शरीर का तो विकल्प नहीं आया, परंतु वात्सल्य के कारण इतना विचार आया कि हमारे भाई युधिष्ठिर आदि का क्या होता होगा? चैतन्य की शांति के वेदन में रंचमात्र बाहर निकलकर इतना-सा शुभराग आया, उससे भी स्वभाव का प्रतिघात हुआ, और केवलज्ञान प्रगट न हुआ; राग के कारण उन्हें सर्वार्थसिद्धि का भव हुआ। (मोक्ष न हुआ, किंतु भव हुआ।)

—इसप्रकार राग का एक कण भी जीव को अनिष्ट है, और वह सर्वथा इष्टरूप ऐसे केवलज्ञान को रोकता है; केवलज्ञान की प्राप्ति में राग के एक कण का भी समावेश नहीं होता। अहा, चैतन्यनाथ! ऐसा तेरा इष्ट स्वभाव-उसके प्रेम से एकबार प्रफुल्लित हो जा! आनंदित हो जा। तेरा ऐसा स्वभाव, इससे अधिक सुंदर दूसरा कोई पदार्थ इस जगत में नहीं है।

अधिक क्या कहें? ऐसे सुंदर अद्भुत सुखस्वभाव का अभी ही उल्लास के साथ स्वीकार कर। जो भव्यजीव आत्मा के ऐसे सुखस्वभाव का अभी ही स्वीकार करते हैं, वे जीव अल्पकाल में ही मोक्ष को साधते हैं, और फिर माता के उदर में अवतार धारण नहीं करते—अशरीरी होकर सदैव सिद्धालय में निवास करते हैं।—उन्होंने अपने स्वगृह में निवास (वास्तु) किया है।

केवली भगवंतों को पूर्ण अतीन्द्रियसुख है, वही परमार्थसुख है। संसारी जीवों के पुण्यफल में जो सुख कहने में आता है, वह कहीं परमार्थसुख नहीं है; मात्र लौकिक अपरमार्थ रूढ़ि से ही उसे सुख कहने में आता है; वास्तव में पुण्यफल भोगने की इच्छा, वह आकुलता है—दुःख है। अरे, कहाँ चैतन्य का अतीन्द्रियसुख और कहाँ इंद्रिय-विषयों की आकुलता! इन दोनों को एक कौन कहे? चैतन्य के सुख का स्वाद जिसने जाना है, उसे तो सभी इंद्रिय-विषयों (-पुण्य और उसका फल) में किंचित् सुख भासित नहीं होता, और वही सर्वज्ञ के परमार्थ आत्मिकसुख का स्वीकार करता है।

सर्वज्ञ के 'एकांतसुख' का जिसने सच्चा स्वीकार किया, वह जीव 'एकांतदुःखी' होता ही नहीं, उसने भी चैतन्यसुख का निजरस चख लिया है। सर्वज्ञ की अपेक्षा से भले ही अल्प, तथापि इंद्रियविषयों से रहित, आत्मा में से ही प्रगट होनेवाले सुख का वेदन सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा

को होता है। फिर भी वर्तमान में उसके भी जितना इंद्रियों के साथ संबंध है, उतना दु:ख ही है। इसलिये उसे 'एकांतसुखी' नहीं कहा; सुखी तो हैं, परंतु एकांतसुखी (पूर्ण सुखी) नहीं; पूर्ण सुखी तो सर्वज्ञ हैं, इसलिये उन्हें ही 'एकांतसुखी' कहा है। अहा, ऐसे एकांतसुखी सर्वज्ञ भगवंतों के अस्तित्व का जिस ज्ञान में स्वीकार हुआ, वह ज्ञान राग में-पुण्य में या विषयों में कहीं रुकता नहीं, वह अतीन्द्रियसुख का स्वीकार करनेवाला ज्ञान स्वयं अतीन्द्रिय होकर आत्मा के सुख का संवेदन करता है।

देखो, यह केवल सर्वज्ञ की बात नहीं, परंतु उसे स्वीकार करनेवाला साधक-सम्यग्दृष्टि भी वैसे अतीन्द्रियसुख का साधक होकर उसका स्वीकार करता है—अतीन्द्रियसुख का स्वाद अपने आत्मा में लेकर ही उसकी प्रतीति होती है। सर्वज्ञ के अतीन्द्रियसुख का स्वीकार करनेवाले को वैसे सुख का अंश अपने में प्रगट न हो-ऐसा नहीं होता। इसलिये आचार्य भगवान अतीन्द्रियसुख के प्रति प्रमोद से कहते हैं कि अहा, सर्वज्ञ के ऐसे सुख का जो तत्क्षण ही (सुनते ही) स्वीकार करता है—श्रद्धा करता है—वह जीव आसन्न भव्य है—मोक्षसुख का भाजन है, अर्थात् वर्तमान में तो वह साधक हुआ है और अल्पकाल में ही वह पूर्ण मोक्षसुख को प्राप्त करेगा।

हे भाई! अरहंतों का ऐसा उत्कृष्ट सुख तुझे पसंद आता है न? वह तुझे इष्ट लगता है न?—हाँ, तो वैसा सुख तेरे आत्मा का स्वभाव है; जिसप्रकार ज्ञान तेरा सहज स्वभाव है, वैसे ही सुख भी तेरा सहज स्वभाव है। तेरा स्वभाव ही परिणमित होकर ऐसे उत्कृष्ट सुखरूप होगा—इसलिये बाह्य विषयों की अपेक्षा छोड़कर, अपने आत्मस्वभाव को ही साधन बना। तेरे सुख का तुझे अपने में ही वेदन होगा।

अतीन्द्रिय आत्मा का सुख अपने में जिसने न देखा, उसने अज्ञानवश इंद्रियों की मित्रता करके विषयों में सुख खोजा; इसलिये महामोहरूपी मिथ्यात्व से वह घिर गया। आँख-कान-हाथ आदि इंद्रियों के बिना मानों मैं जान ही नहीं सकता—इनके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता—ऐसा मानता हुआ अज्ञानी जीव इंद्रियों के द्वारा ही अपना जीवन मानता हुआ इंद्रियों के साथ मित्रता करता है। इंद्रियों के साथ मित्रता का संबंध माना अर्थात् अतीन्द्रियस्वभाव के साथ का संबंध छोड़ा, इसलिये वह जीव मोह से इंद्रिय-विषयों में आकुल-व्याकुल वर्तता

हुआ दु:ख का ही उपभोग करता हुआ संसार में ही परिभ्रमण करता है। परंतु जिस धर्मात्मा ने सर्वज्ञ को पहिचानकर अपने आत्मा के अतीन्द्रियसुख को प्रतीति में लिया है, वह जीव इंद्रियविषयों में रंचमात्र सुख नहीं मानता; इसलिये इंद्रियों के साथ किंचित् मित्रता (एकता) नहीं करता परंतु उनसे अत्यंत भिन्नता करता है और अपने अतीन्द्रिय सुखस्वभाव में परिणति का एकत्व कर उसकी मित्रता करता है; उसी में तन्मय वर्तता हुआ वह मोक्षसुख को साधता है; और सदैव अपने स्वभाव से ही महान सुखरूप परिणमित होता रहता है।

अहो भव्य जीवो! आनंद से आत्मा के सुखस्वभाव का स्वीकार करो। सुख अंतर में है, बाह्य में नहीं। बाहर का आश्चर्य छोड़कर आत्मा का आश्चर्य करो।

इंद्रियविषयभूत पदार्थ आत्मा के स्वभाव से विपरीत हैं; उनमें सुख की कल्पना करना, वह तो सुखस्वभावी आत्मा का अनादर है। अरेरे! 'मुझमें सुख नहीं और पर में सुख है'—ऐसा माननेवाला जीव आत्मा का वैरी और विषयों का मित्र होकर संसार में परिभ्रमण न करे तो कहाँ जायें? विषयों में सुख माननेवाले समस्त अज्ञानी जीव (स्वर्ग के देव भी) एकांतसुखी हैं। साधक ज्ञानी भले छद्मस्थ हो तो भी वह आत्मा के सुख को जाननेवाला है और विषयों में कहीं सुख की कल्पना नहीं करता, इसलिये वह एकांत दु:खी नहीं है, परंतु जितना अतीन्द्रियभाव उसे प्रगट हुआ है, उतना तो अतीन्द्रियसुख उसे निरंतर वर्तता है, और अल्पकाल में वह पूर्ण सुखी बन जाता है।

निर्वाणमहोत्सव समाचार

भारत भर में नारा लगा है—महावीर निर्वाण का
महावीर के भक्त समस्त जैनसमाज में अभूतपूर्व चेतना जाग उठी है।

कौन कहता है भारत में आज महावीर नहीं हैं ? दिल्ली में देखो कि सोनगढ़ में, लाल मैदान में देखो या छोटी गली में देखो, भारत के कोने-कोने में कहीं पर भी देखो-आपको 'महावीर' की आवाज सुनाई देगी; महावीर के गुणगान से आज सारा देश गूँज उठा है। चलो, हम देखें-सुनें कहाँ क्या हो रहा है ?

देखो, यह है पाटनगर दिल्ली! बड़ा भारी जुलूस चल रहा है, जिसमें देखो तो सही—कितनी झाँकियाँ बनी हैं महावीर के जीवन की! ३०० झाँकियाँ हैं, लाखों भक्तजन आनंद से वीरनाथ का जयजयकार कर रहे हैं। भजन-नृत्यमंडलियाँ एक-एक से बढ़कर कार्यक्रम दिखला रही हैं। चार मील के रास्ते में लाखों नगरजन, एवं विदेशी प्रवासी लोग आश्चर्यान्वित होकर यह अभूतपूर्व धर्मजुलूस देख रहे हैं और आपस में कह रहे हैं कि ऐसा भव्य धार्मिक जुलूस दिल्ली में आज पहली बार ही देखा! मानों महावीर भगवान का ही पुनः विहार हो रहा है! वीरप्रभु की शोभायात्रा सुबह ११ से प्रारंभ होकर छह बजे लालकिले के मैदान में आ पहुँची। महावीर के भक्त सभी जैन इसमें सम्मिलित हैं। अरे, बीच में मस्जिद के पास यह क्या हो रहा है ? वाह! हमारे देश के मुस्लिम भाईयों भी महावीर भगवान का यह अभूतपूर्व जुलूस देखकर प्रमुदित हो रहे हैं, और महावीरसंदेश के झंडों से स्वागत करते हुए इलायची-मिश्री बाँट रहे हैं। अनेक हाथी-घोड़े-ऊँट भी सुसज्जित होकर जुलूस में चलते हुए अपने को भाग्यशाली समझते हैं।

जुलूस में लाखों की संख्या में यात्रीगण भाग ले रहे हैं, परंतु किसी को यह याद नहीं आता कि हम श्वेताम्बर हैं या दिगम्बर ? सभी को एक ही धुन लगी है कि हम महावीर के संतान हैं और महावीर का २५००वर्षीय निर्वाणमहोत्सव मना रहे हैं। सभी त्यागी-नेता

लोग हिल-मिलकर एकसाथ चल रहे हैं। समस्त जनता की एक ही आवाज है कि—'कल्याण करना हो तो वीरमार्ग में आओ। महावीर का वीतरागी संदेश ही जगत का कल्याण करेगा।' जुलूस में कोई गुजराती, कोई पंजाबी, कोई राजस्थानी, कोई मारवाड़ी, ऐसी चित्र-विचित्र वेशभूषा होते हुए भी सभी के मुँह से एक ही भाषा निकल रही है—'भगवान महावीर की जय!'

रामलीला मैदान के सुसज्जित मंच पर से बड़ी भारी आमसभा के बीच में भारत के बड़ाप्रधान श्रीमती इंदिराबहिन गांधी ने सारे देश की ओर से महावीर भगवान को श्रद्धांजलि दी, और भारत की गौरवशाली आध्यात्मिक देन की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि यह बड़ी अजब की और हैरानीवाली बात है कि तमाम धनवैभव-सुखसुविधाओं के बाद भी दूसरे देश अब अपने को टटोल रहे हैं; क्योंकि आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्हें घुटन महसूस हो रही है। भारत ने दुनिया को हमेशा अध्यात्मदान दिया है। भगवान महावीर महाविजेता (जिनवर) थे—ऐसी संज्ञा देकर इंदिराबेन ने कहा कि—महा विजेता महावीर ने हमें यह सिखाया कि लड़ो मत! लड़ना ही हो तो अपने से लड़ो, दूसरों से नहीं। अपने अन्तस् को टटोलो—यही भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी देन है। श्रीमती गाँधी ने जोर देकर यह कहा कि—यह सच है कि आज हम आधुनिकता और विज्ञान के युग में बह रहे हैं—लेकिन आधुनिकता का मतलब यह नहीं कि हम अपने प्राचीन-अध्यात्मसंस्कृति को छोड़ दें या उनसे किनाराकशी करने लगें। आगे चलकर श्रीमती इंदिराबेन ने कहा कि हमें शांति केवल मनुष्यों में ही नहीं बल्कि प्राणीमात्र में लानी है, और यह शांति का स्थापन भगवान महावीर के मूलमंत्र अहिंसा तथा अपरिग्रह से ही संभव है। अपनी श्रद्धांजलि को दोहराते हुए श्रीमती गांधी ने बच्चों और नई पीढ़ी से अपील की कि वे भगवान महावीर के सिद्धांतों को अपने जीवन में उतारें।

(माननीय राष्ट्रपतिजी ने भी अपनी ओर से एवं राष्ट्र की ओर से भगवान महावीर निर्वाणोत्सव के लिये श्रद्धांजलि व्यक्त की थी।)

निर्वाणमहोत्सव के रंगमंच की शोभा अद्भुत थी। गगन में लहराता हुआ पचरंगा धर्मध्वज मानों जनता को पंच परमेष्ठियों का आशीर्वाद ही दे रहा था। जैन समाज के अग्रिम नेतागण श्रीमान सेठ कस्तुरभाई लालभाई तथा श्रीमान सेठ शांतिप्रसादजी साहूजी आदि ने भी

अपनी बहुत प्रसन्नता व्यक्त की। समग्र जैनसमाज की जो एकता देखने में आई, वह बहुत ही खुशी की बात है। हम सब एक-दूसरों से मिलकर प्रसन्नता से वीरगुण गायें, कहीं भी क्लेश न रहें, और महावीर के शासन में सब अपना-अपना आत्महित करें।-यही भावना और यही महावीर का सच्चा महोत्सव है!

हमने दिल्ली का दरबार देख लिया... अब चलो अजमेर तथा इंदौर! अहा, दोनों जगह अद्भुत रचना बनी हुई है। जैनेद्र धर्मचक्र के साथ ५०००० पचास हजार की जनता चलती हुई अभूतपूर्व उत्साह का दृश्य खड़ा कर रही है। अजमेर में पावापुरी की रचना ऐसी है मानों वीरनाथ फिर आकर पावापुरी में धर्मोपदेश दे रहे हैं। सभी जनता बहुत आनंद से भाग ले रही है।

अजमेर में व इंदौर में सभी जैनों ने सम्मिलित होकर जो भव्य जुलूस निकाला था, वह दोनों जगह अद्वितीय व अपूर्व था। राजस्थान सरकार ने इस वीर निर्वाणमहोत्सव के वर्ष में किसी को भी फाँसी की सजा न देने की घोषणा की है।

अनेक शहरों में फिल्म का आयोजन किया गया। हम अपने जैन-स्थानों में हमारे धर्म की फिल्म दिखायें-यह उचित है, परंतु सामाजिक थियेटरों में जहाँ विभत्स चित्रों का प्रदर्शन होता रहता है, उसके बीच में हमारे धर्म का प्रदर्शन करना उचित नहीं है, यह हमारे लिये अनायतन है। एक ओर से हम हमारे युवकों को ऐसी फिल्म नहीं देखने का ऐलान देवे और फिर वैसे ही थियेटरों में हमारी फिल्मों का कार्यक्रम रखें-यह आयोजन ठीक नहीं है।

मद्रास में समस्त जैनों ने मिलकर भव्य रथयात्रा निकाली थी। हाथी-धर्मध्वज-बैंडबाजे, ६३ धार्मिक झांकियाँ (Models) आदि से बहुत सुसज्जित रथयात्रा थी। बच्चों का उत्साह भी दर्शनीय था।

सौराष्ट्र में मोरबी शहर में सभी जैनों ने हिलमिलकर आनंदपूर्वक महावीर भगवान की भव्यरथयात्रा निकाली थी। हाथी पर जैनध्वज, अनेक बैंड एवं भक्तों का उत्साह देखकर जनता प्रभावित हुई थी। भगवान का ऐसा भव्य जुलूस पहली बार ही निकला।

बावलवाश (शिरपुर) पटवारी शेरमहमदजी के सभापतित्व में वीरनिर्वाणोत्सव की एक सभा हुई-जिसमें सभापतिजी ने आजीवन मांसभक्षण तथा जीवहिंसा का त्याग किया। अनेक लोगों ने रात्रिभोजन का त्याग किया।

बड़ौत (मेरठ) स्वाध्यायभवन निर्माण होने जा रहा है - जिसके लिये करीब २५०००) रुपये की कीमत की जमीन श्रीमती सुन्नीबाई ने प्रदान की है।

जहाजपुर, लातूर, हैदराबाद, खैरागढ़, जामनगर, बम्बई-घाटकोपर-दादर-मलाड, गुना, पूना, मौ, मालेगांव, खड़ेरी, जांबुडी, बावलवाडा, सहजपुर, विलासपुर, रखियाल, मंदसौर, जेतपुर, सिलवानी, सेमारी, उदेपुर, भिंड, खनियांधाना तथा कटंगी। इत्यादि अनेक जगह से आनंदपूर्वक निर्वाणोत्सव मनाने का समाचार प्राप्त हुआ है। अनेक दिनों पहले से घर-घर रोशनी प्रगटायी गई, धर्मध्वज लहराये गये, मंगलगीत गाये गये। पूरी जैनसमाज भेद को भूलकर मानों एक हो गई हो—ऐसा उल्लासपूर्ण वातावरण भगवान के यह २५०० वर्षीय निर्वाणमहोत्सव में सारे देश में छा गया है। यह भी पूरा संभव है कि इसी वर्ष में हमारे सभी तीर्थों की समस्यायें भी सुलझ जायें। अनेक जगह पुस्तकों की प्रभावना, रथयात्रा, शिक्षणशिविर तथा आनंदमय नाटक के द्वारा महावीर भगवान की महिमा प्रसिद्ध की गई—जिसे देखकर सुनकर सभी आनंदित हुए, मानों सर्वत्र वर्द्धमान तीर्थ के शासन का साम्राज्य छा गया। —जय महावीर।

जामनगर में निर्वाणोत्सव का अच्छा कार्यक्रम बना था। प्रभातफेरी, बालकों का कूचगीत (वीरप्रभु की हम संतान... हैं तैयार... हैं तैयार) तथा निर्वाणपूजन, मंदिर में रोशनी-ध्वजाओं की सजावट, धार्मिक नाटक, नृत्य-भजन, धार्मिक परीक्षायें तथा इनाम दिये गये थे।

सोनगढ़ में अनेक कार्यक्रमों के साथ तीन दिन तक सामूहिक, पंच परमेष्ठी विधान भी किया गया था। खैरागढ़ में ६४ ऋद्धिविधान पूजन हुआ था। बांकानेर में पंचपरमेष्ठी विधान पूजन हुआ था।

*** जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्व सौख्यप्रदायी ***

चैतन्यभाव

स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष यह सबसे श्रेष्ठ प्रमाण है। वहाँ दूसरे प्रमाण की अपेक्षा नहीं रहती। ज्ञान स्वयं अपने को जानने के लिये दूसरे ज्ञान की अपेक्षा नहीं रखता, क्योंकि वह स्वसंवेद्य है। स्व-संवेद्यपना मात्र ज्ञान में ही है।

हमारे वृद्धजनों के लिये—खास वैराग्य-संबोधन

ओ वृद्धजन! आप घबड़ाइये मत! 'हमारा कोई नहीं' ऐसा सोचकर हतोत्साह मत हो जाना। आपके जीवन में जो उत्तम संस्कार आपने प्राप्त किये हैं, उनकी अमूल्य पूंजी आपके पास में ही है। अंतिम जीवन की हमारी उत्तम भावनायें ही हमें शांति देनेवाली हैं; अतः उसी का लक्ष रखकर अन्य की अपेक्षा छोड़ दो।

शरीर का ममत्व तो छोड़ने का ही है; वैसे भी इस देह में ममत्व करने जैसा है भी क्या? तब फिर इस शरीर की सेवा करनेवाला कोई हो या न हो, उसकी हमें क्या चिंता? आत्मा की चिंता करो, और जैसे अपना भविष्य अच्छा बने-ऐसा करो।

आत्महित का जो कार्य युवानी में भी न हो सका, वह शूरवीर होकर अब शीघ्र कर लो। चाहे वृद्धावस्था हो-परंतु बहादुर आत्मा की शूरवीरता को वह कुछ भी ढीली नहीं कर सकती।

हृदय में जिनभक्ति करो; पंचपरमेष्ठी को याद करो; मुनिपद की भावना करो, सम्यक्त्व की भावना करो; देह की क्षणभंगुरता तथा आत्मा की नित्यता का विचार करके वैराग्य की उत्तम भावना भाओ। बस, फिर आपको कोई दुःख नहीं रहेगा। अंतर में यदि जिनभावना है तो बाह्य की प्रतिकूलता भी क्या करेगी?

धर्म करना है?—कब?

- ❀ जब वृद्धावस्था होगी, तब धर्म करेंगे—ऐसा कहते-कहते अनेक जड़बुद्धि लोग धर्म के बिना ही चल बसे!
- ❀ अरे, धर्म (आत्महित) करने में वृद्धावस्था की बाट क्यों देखना? मुमुक्षु के जीवन में सबसे पहला स्थान धर्म का होता है। सबसे पहला काम धर्म का-यही क्षण धर्म की!
- ❀ जब एक साथ तीन बधाईयाँ आईं तब, भरतराज ने पुत्र तथा राज्यचक्र इन दोनों को गौण करके, प्रथम केवलज्ञान की पूजा की; यह प्रसंग धर्म की प्रधानता प्रसिद्ध करता है।
- ❀ हे भाई! तुझे दुःखों से छुटकारा पाना हो तो वर्तमान जो क्षण तेरे सामने विद्यमान है, उसी का सदुपयोग कर ले; दूसरी क्षण के विश्वास पर अपने हित में विलम्ब मत कर।
- ❀ आत्मा की आराधना करने को मेरे लिये यही सबसे ऊँचा मुहूर्त है-ऐसा समझकर आराधना में लग जाओ। मुहूर्त बीत जायेगा तो पछताना पड़ेगा।

*** हमारी गुजरातीभाषाका थोड़ा रसास्वादन कीजिये— ***

આત્માને ઓળખો.	आत्माने ओळखो.
આત્મા જ્ઞાનસ્વરૂપ છે.	आत्मा ज्ञानस्वरूप छे.
ધર્મનું મૂળ સમ્યગ્દર્શન છે.	धर्मनुं मूळ सम्यग्दर्शन छे.
અમારા દેવ સર્વજ્ઞ છે.	अमारा देव सर्वज्ञ छे.
દરરોજ ભગવાનનાં દર્શન કરો.	दररोज भगवानना दर्शन करो.
ચારિત્રવંત મુનિવરોને નમસ્કાર કરો.	चारित्रवंत मुनिवरोंने नमस्कार करो.
જિનવાણીની સ્વાધ્યાય કરો	जिनवाणीनी स्वाध्याय करो.
રત્નત્રય મોક્ષનું કારણ છે.	रत्नत्रय मोक्षनुं कारण छे.

[कितनी सुगम-सरस है हमारी गुजराती भाषा !]

इन गुजराती वाक्योंके हिन्दीमें रुपान्तर करनेका प्रयोग कीजिये।

सुलझा दो हमारी एक अच्छी पहेली

और प्राप्त कर लो एक बहुत अच्छी अत्यंत सुंदर वस्तु

❀ यह सुंदर वस्तु आपको–हमको–सबको बहुत प्रिय है।

❀ पंचपरमेष्ठी भगवंत ने भी अपने में यह चीज़ रखी है।

❀ वह प्राप्त करने से हमें मोक्ष की टिकट मिल जाती है।

❀ वह चीज़ सात अक्षर की है –

उसका तीसरा–चौथा अक्षर हमें बिल्कुल प्रिय नहीं लगता परन्तु उनके साथ यदि प्रथम के दो अक्षर मिला दें तो वह हमें बहुत प्रिय लगता है। उसका प्रथम तथा पंचम अक्षर इंग्लिश मूलाक्षरों में २२वाँ है।

❀ यह सुंदर वस्तु यद्यपि ब्रिटेन के बड़ाप्रधान चर्चिल के पास में नहीं थी, किंतु उसका प्रथमाक्षर बोलते ही हमें चर्चिल की याद आ जाती है।

❀ सात अक्षर की यह वस्तु प्राप्त करने को आप सब बहुत इंतजार हो,; अरहंतदेव के मार्ग में वह आपको अवश्य मिलेगी। जीवन में आप जरूर उसे प्राप्त करना।

❀ यदि न मिले तो छहढाला का स्वाध्याय प्रारंभ करते ही वह आपको अवश्य मिल जायेगी। मिलने से आनन्द होगा।

सद्गुरु बुला रहे हैं—

मोक्षपुरी के मारग आओ... ओ अनजान बटोही!

[कवि-हजारीलाल जैन 'काका', पोस्ट-सकरार (झांसी)]

[पूज्य गुरुदेव प्रवचन करते-करते जब भावविभोर होकर आँखें बंद करके कहते हैं कि—'हे प्रभु! एकबार अंतर में तो झाँक, सुखों का सागर लहरा रहा है।' और वास्तव में उस समय श्रोताओं को आत्मदर्शन की उत्कंठा जागृत होती है और तब उसका अंतर कहता है कि..... क्या कहता है यह कवि के शब्दों में ही पढ़िये—]

पर से प्रीति लगाकर अब तक व्यर्थ उमरिया खोई,
चारों गति में भटक रहा क्यों ओ अनजान बटोही!
पर में खोज रहा जिस सुख को वह है तेरे अंदर,
एक बार तो देख सुखों का लहरा रहा समुंदर,
बन कर दीन डोलता है क्यों ओ शिवपुरी के वासी,
तू ही स्वयं सिद्ध परमातम अजर-अमर अविनाशी,
अब तक मिथ्या भ्रम में पड़कर काफी मंजिल खोई,
चारों गति में भटक रहा क्यों ओ अनजान बटोही!
क्रियाकांड को धर्म समझकर अब तक समय गमाया,
संक्लेशों का सागर झेला सुख को समझ न पाया,
भटक रहा मोहांधकार में उमर गमाता प्रतिक्षण,
तत्त्वों की पैनी छैनी से काट मोह का बंधन,
राग-द्वेष को मार तुझे बनना होगा निर्मोही,
मोक्षपुरी के मारग आओ ओ अनजान बटोही!
सद्गुरु बुला रहे हैं—तज दे मृगतृष्णा का फेरा,
युगों-युगों के बाद आज आया है सुखद सबेरा,
मोहनींद को त्याग भेद-विज्ञान हृदय में धर ले,
सम्यक्दर्शन का दर्शन कर जग से पार उतर ले,
'काका!' व्यर्थ गमाया नरभव अगर घड़ी यह खोई,
चारों गति में भटक रहा क्यों ओ अनजान बटोही!
मोक्षपुरी के मारग आओ ओ अनजान बटोही!

मुमुक्षु का व्यवहार

❀ किसी भी साधर्मी के किसी सद्गुण की प्रशंसा होती हो तो वह देखकर हे जीव! तू आनंदित होना, ईर्षा नहीं करना।

❀ साधर्मी के गुणों की ईर्षा, वह तो धर्म का ही अनादर है, गुण की विराधना है।

❀ और साधर्मी पर असत् कलंक लगाने का भाव, वह तो धर्म के अवर्णवाद का महान पाप है।

❀ संसार में जीव को जो तीव्र अपजश-प्रतिकूलता आदि दुःख आ जाते हैं, वह स्वयं उसने पूर्व में देव-गुरु-साधर्मी की निंदा-विराधना की हो, उसी का ही भयंकर पापफल है।—ऐसा समझकर देव-गुरु-धर्म की विशेष आराधना करना चाहिये।

❀ सच्चे भाव से देव-गुरु-धर्म का सेवन करनेवाले मुमुक्षु को संसार के कोई दुःख नहीं रह सकता।

❀ इसलिये हे जीव! तुम परम स्नेह से सर्वज्ञदेव के धर्म को ही शरणरूप जानकर उसकी आराधना करो, गुरुओं की सेवा करो और साधर्मी को अपना स्वजन ही समझकर एवं उनसे हिलमिल कर प्रसन्न हो।

❀ देव-गुरु-साधर्मी के प्रति मुमुक्षु का व्यवहार बहुत ऊँचा होता है। जिस सर्वोत्तम वीतरागमार्ग को वह स्वयं साध रहा है, उसी मार्ग में अपने साथीदार साधर्मियों को देखकर उसका चित्त हर्ष से उल्लसित हो जाता है, तथा अपने को ऐसा सर्वोत्तम मार्ग जिनके प्रताप से मिला है, ऐसे देव-गुरु के प्रति भक्ति बहुमान से उसका चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। इसलिये मुमुक्षु का अपने साधर्मी के प्रति जो स्नेह-व्यवहार है, वह जगत के लौकिक संबंध की अपेक्षा कोई अनोखा ही होता है। वाह रे वाह! उसके अंतर में तो आत्मा का उत्तम अनुभव है और उसका बाह्य व्यवहार भी मोक्षमार्ग के साथ सुशोभित हो—ऐसा उत्तम होता है। ऐसे मुमुक्षु के उत्तम निश्चयव्यवहार से जिनमार्ग सुशोभित हो रहा है।

—जय महावीर!

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) कार्तिक (३५५)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) प्रति ३०००